नवशक्ति ग्रन्थमाला-१

Navashakti Series_1

ब्रह्मार्चनपद्धतिः

BRAHMĀRCANPADDHATIH



सम्पादक :

आचार्य मृत्युञ्जय त्रिपाठी

हिन्दूधर्मशास्त्रोक्त

ब्रह्मार्चनपद्धति

(देवाधिदेव ब्रह्मा की पूजा-पाठविधि)

सङ्कलनकर्ता, अनुवादक एवं सम्पादक

आचार्य मृत्युञ्जय त्रिपाठी

वाराणसी



नवशक्ति प्रकाशन

चौकाघाट, वाराणसी.

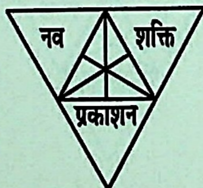
१९९७

(On the basis of Hindu Religion)

BRAHMĀRCANA PADDHATI

[The Worship System of Lord Brahmā]

Compiler, Translater & Editor
Ācārya Mṛityuñjaya Tripāthī
Varanasi



Navashakti Prakashan
Chawkaghat, Varanasi.

1997

नवशक्ति ग्रन्थमाला–१

Navashakti Series-1

ब्रह्मार्चनपद्धतिः

[The Worship System of Lord Brahmā]

सम्पादक :

आचार्य मृत्युञ्जय त्रिपाठी

प्रकाशक :
© नवशक्ति प्रकाशन
चौकाघाट, वाराणसी-२
दूरभाष : ३४२२३७

Publisher :
© Navashakti Prakashan
Chaukaghat, Varanasi-2
Phone : 342237

प्रथम संस्करण : १९९७

First Edition : 1997

मूल्य : १००/= रु०

Price : Rs. 100/=

मुद्रक :
साधना प्रेस
कॉटनमिल कॉलोनी,
वाराणसी-२
दूरभाष : २१००९४

Printer :
SADHANA PRESS
Cotton Mill Colony,
Varanasi-2
Phone : 210094

॥ मङ्गलम् ॥

ब्रह्माऽऽत्मभूः सुरज्येष्ठः परमेष्ठी पितामहः ।
हिरण्यगर्भो लोकेशः स्वयम्भूश्चतुराननः ॥ १ ॥

धाताऽब्जयोनिर्द्रुहिणो विरिञ्चिः कमलासनः ।
स्त्रष्टा प्रजापतिर्वेधा विधाता विश्वसृड् विधिः ॥ २ ॥

धातुरेतानि नामानि मोक्षदान्यभयानि च ।
श्रद्धाविनयसम्पन्नो यः पठेच्छृणुयादपि ॥ ३ ॥

विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा ।
संग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥ ४ ॥

॥ ओं महाविद्यायै नमः ॥

प्राक्कथन

इस पुस्तक की आवश्यकता

मैं पौरोहित्य (=देवपूजा=पुरोहिताई) वृत्ति का पालन करते हुए थाई (स्याम) देश की राजधानी बैंकाक महानगर में रह रहा हूँ। इसी वृत्ति के कारण मुझे सन्—१९९० की जुलाई में, ताइवान (फारमोसा) देश के एक नगर ''चाङह्वा'' में ब्रह्मा जी की एक विशाल प्रतिमा की प्राणप्रतिष्ठा-विधि सम्पन्न कराने के लिये, जाने का अवसर प्राप्त हुआ। तब से आज तक मुझे उनके आमन्त्रण पर वार्षिकोत्सव एवं अर्धवार्षिकोत्सव के अवसर पर विशेष पूजन-यज्ञ सम्पन्न कराने हेतु जाना पड़ता है। यद्यपि वहाँ उस क्षेत्र में एक भी भारतीय नहीं है, इसलिये वहाँ के मूल नागरिकों (चाइनिस जनता) के बीच सारी विधि सम्पन्न होती है और वे ही यजमान होते हैं। भाषा की समस्या थाई अनुवादक (थाई से चाइनिस व चाइनिस से थाई के रूप में) पूरी करते हैं।

हर एक यात्रा में चाइनिस (चीन देशवासी) यजमानों की ओर से माँग आती है कि ''भगवान् ब्रह्मा जी की उपासना सम्बन्धी विधि, मन्त्र-स्तोत्र आदि का ज्ञान हमें भी कराइये और सम्भव हो तो इस विषय पर एक पुस्तक की व्यवस्था कीजिये, ताकि हम लोग ब्रह्मा की उपासना शास्त्रीय पद्धति (सही ढंग) से कर सकें।''

इस सम्बन्ध में थाई देश या भारत में बहुत से विद्वानों, पुस्तक विक्रेताओं, पुस्तकालयों के अधिकारियों से पूछ-ताछ करने पर इसका उत्तर नकारात्मक ही मिला और मैं निराश सा हो गया।

इस पुस्तक के संग्रह की प्रेरणा

एक दिन अकस्मात् मुझे एक सज्जन के घर में 'कल्याण' क सैंतीसवें वर्ष का विशेषाङ्क ''संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्त पुराणाङ्क'' मिला।

उसके ब्रह्म-खण्ड के आठवें अध्याय में एक कथा पढ़ी। उस कथा में ब्रह्मा जी द्वारा नारद को शाप और नारद जी द्वारा ब्रह्मा को शाप देने का वर्णन था। नारद जी अपने पिता ब्रह्मा जी को शाप देते हुए कहते हैं—

"हे चतुरानन! आपने विना किसी अपराध के मुझे शाप दिया है, अतः बदले में मैं भी आपको शाप दूँ तो अनुचित न होगा। मेरे शाप के कारण आज से, सम्पूर्ण लोकों में कवच, स्तोत्र और पूजा सहित आपके मन्त्र का निश्चय ही लोप हो जायगा। पिताजी! जब तक तीन कल्प न बीत जायँ, तब तक तीनों लोकों में आप अपूज्य बने रहेंगे। तीन कल्प बीत जाने पर आप पुनः पूजनीयों के भी पूजनीय होंगे। सुव्रत! इस अन्तराल में आपका यज्ञ भाग बन्द हो जायगा। व्रत आदि में भी आपका पूजन न होगा। केवल एक ही बात रहेगी कि आप देवता आदि के वन्दनीय बने रहेंगे।"

इसे पढ़ने के बाद, यह विचार मन में उठा कि नारद द्वारा दिए शाप के पूर्व ब्रह्मा जी की उपासनाविधि तथा मन्त्र व स्तोत्र आदि लोकों में अवश्य प्रचलित थे। अगर ऐसा था तो खोज करने पर उस अवस्था में वे प्राप्त होंगे, यदि उक्त घटना को तीन कल्प बीत चुके हों।

रामचरितमानस के अध्ययन से यह प्रमाणित होता है कि, उस घटना को बहुत कल्प बीत चुके हैं, यथा—

"इहाँ वसत मोहि सुनु खग ईसा। बीते कलप सात अरु बीसा॥
करउँ सदा रघुपति गुनगाना। सादर सुनहिं बिहंग सुजाना॥
जब जब अवध पुरी रघुबीरा। धरहिं भगत हित मनुज सरीरा॥
तब तब जाइ राम पुर रहऊँ। सिसु लीला विलोकि सुख लहऊँ॥
पुनि उर राखि राम सिसुरूपा। निज आश्रम आवउँ खगभूपा॥"

(द्र०—रा०च०मा० उत्तरकाण्ड, दोहा ११४)

इस प्रकार सत्ताईस कल्प की चर्चा तो काकभुशुण्डि जी ने अपने जन्म जन्मान्तर का इतिहास बताते हुए गरुड़ जी से की।

हम पूजा पाठ-पाठ आदि धार्मिक अनुष्ठानों में जो सङ्कल्प परम्परा से करते आ रहे हैं, उसमें कहते हैं ''ब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे''— यह दर्शाता है कि ब्रह्मा की एक सौ वर्ष की आयु में से ५० वर्ष बीत चुके हैं अतः पचास वर्षों में (दो कल्प बराबर एक अहोरात्र की दर से) कई कल्प व्यतीत हो गये। हाँ, किस कल्प में नारद जी ने शाप दिया था, यह अभी खोज का विषय है।

ऐसा लगता है कि नारद के शाप की अवधि से ब्रह्माजी मुक्त हो चुके हैं; क्योंकि हर यज्ञ में कई पदों पर उन्हें यज्ञभाग दिया जा रहा है।

दक्षिण-पूर्व एशिया में ब्रह्मा

दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में थाईलैण्ड एक ऐसा देश है, जहाँ प्राचीन भारतीय संस्कृति के दर्शन पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य, बड़े-छोटे के दैनिक व्यवहार में, साहित्य में, शिल्पकला में, कुछ विशेष पर्वों में, संस्कारों में और धार्मिक परम्परागत क्रियाकलापों एवं मान्यताओं में होता ही रहता है।

वर्तमान में इधर दो दशकों में देववाद का प्रचार-प्रसार बहुत तेजी से बढ़ा है। हजारों लोगों के घरों में, सार्वजनिक स्थानों में, बड़े-बड़े, व्यापारिक केन्द्र के भवनों में कहीं शिव का, कहीं नारायण का, कहीं गणेश का, कहीं इन्द्रदेव का, कहीं शक्ति (दुर्गा-काली-लक्ष्मी-सरस्वती आदि) के नाना रूपों का दर्शन आप पा सकते हैं। कई महानुभावों के घरों में अधिकाधिक देवसमूह का दर्शन एक स्थान पर ही, भगवान् बुद्ध की प्रतिमाओं के साथ प्राप्त होता है। परन्तु; ब्रह्मा जी का तो महत्व ही निराला है। आप बाहर सड़क पर टहलने निकल पड़ें और दाएँ-बाएँ बने भवनों पर दृष्टि डालते रहें तो हर दश-बीस भवनों के अन्तर पर चतुर्मुख, अष्टभुज, सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी का दर्शन भव्य रूप में मिलता रहेगा।

कुछ आचार्यों की मान्यता है कि थाई देश में बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के साथ ही साथ, ब्रह्मा जी सहित अन्य देवी-देवताओं

का आगमन भी, उक्त समय के ब्राह्मणों द्वारा हुआ। इस विषय में मेरा व्यक्तिगत विचार है कि, यह देववाद बौद्धधर्म के प्रचार काल के पूर्व भी इस भूमि पर रहा होगा। जैसा कि कुछ खण्डहरों के खनन (खुदाई) होने पर प्राप्त देव प्रतिमाओं व शिवलिङ्गों से आभास मिलता है। यह विषय रिसर्च करने वाले पुरातत्त्वविदों का है इसलिए इस पर अधिक कुछ कहना भी धृष्टता मानी जायगी।

बौद्धधर्म के ग्रन्थों में ब्रह्मा-इन्द्र आदि का वर्णन किसी न किसी रूप में है। इस कारण उक्त देवताओं के बारे में जानकारी थाई बन्धुओं को बहुत पहले से रही है। जो विकसित होकर आज कुछ अधिक दिखायी देने लगी है। जिसमें ब्रह्मा जी का स्थान सर्वाधिक है।

बैंकाक महानगर के मध्य में एक चौरस्ते के कोने पर (चौरस्ते का नाम है सीयैकराछप्रसोङ्) ''फ्रा फ्रोम एरावन्'' (हिन्दी में होगा वर ब्रह्म एरावत) नाम से विश्वविख्यात ब्रह्मा जी की, चतुर्मुख-अष्टभुज रूप में, प्रतिमा विद्यमान है। जिनकी मान्यता सर्वसाधारण जन में अत्यधिक है। यहाँ तक कि दक्षिणपूर्व एशिया के कई देशों के लोग अपने देश से तैयारी करके एरावान ब्रह्मा जी का दर्शन करने आते हैं। जनता की मान्यता है कि एरावान ब्रह्मा का दर्शन करके, जिस कामना के लिए मनौती मानते हैं, वह कामना प्रायः पूरी होती है।

दर्शनार्थियों की सुविधा के लिये चौतरफा सड़कों के फुटपाथ पर फूल की मालाएँ, धूप, मोमबत्ती (दीप की जगह), फल, लकड़ी के बने हाथी बेचने वाले लोग दूकान सजाकर बैठे रहते हैं और स्थानाभाव के कारण चल फिर कर बेचने वाले कुछ लोग भी दिखाई देते हैं। कामना की पूर्ति हो जाने पर या पूर्ति के पूर्व भी भक्त लोग किन्नरियों द्वारा नृत्य करवाते हैं। यह नृत्य चार-आठ-बारह-सोलह नृत्याङ्गनाओं का समूह करता है। एक समूह में चार नृत्याङ्गनाएँ होती हैं। आप चार समूह तक का नृत्य अपनी शक्ति के अनुसार करवा सकते हैं। प्रति समूह के लिये दक्षिणा भेंट निश्चित है। सारा प्रबन्ध पुरातत्त्व विभाग शिक्षा मन्त्रालय द्वारा नियुक्त एक कमेटी द्वारा

होता है। चढ़ावे में जो द्रव्य आता है उससे जनसमूह के आवश्यक अङ्गों की सेवा की जाती है।

यहीं से ब्रह्मा जी के पूजन की ज्योति फैलनी शुरू हुई और केवल थाई देश में ही नहीं, बल्कि ताइवान, हांकांग, सिंगापुर, कोरिया, जापान में भी जा पहुँची। अब धीरे-धीरे चीन में भी प्रवेश कर रही है। थाई देश के बाद सबसे अधिक मान्यता ताइवान (फारमोसा) में हो रही है जो दिनोंदिन बढ़ती जा रही है।

बौद्ध धर्म के ग्रन्थों के अनुसार अपने अच्छे कर्म के फलस्वरूप कोई भी जीव ब्रह्मलोक में जा सकता है। हिन्दू ग्रन्थों में केवल पुरुष वर्ग को ही ब्रह्मा का पद प्राप्त है, परन्तु बौद्धधर्म के अनुसार नारी भी ब्रह्मा पद प्राप्त कर सकती है। बौद्ध धर्म के ग्रन्थों में १६ ब्रह्मलोक और ४ महाब्रह्मलोक कहे गये हैं। सबसे ऊपर के ब्रह्म लोक में आयु का मान १६००० कल्प है। किन ब्रह्म लोकों में किन और कितने शुभकर्म करने वाले जाते हैं। यह अभी अन्वेषण का विषय है।

थाई भाषा में एक पुस्तक "देव नियाय" नाम से (स० फलायनोय) द्वारा लिखी "बांसङ्सासन) पार्टनरशिप लिमिटेड" द्वारा प्रकाशित है। उसमें वर्तमान में ब्रह्मा जी के प्रचार-प्रसार व महत्व के बारे में जो लिखा है उसका हिन्दी अनुवाद आप सबकी जानकारी के लिए लिख रहा हूँ—

"वर्तमान में प्रजाजनों में ब्रह्मा जी का आदर सम्मान पहले की अपेक्षा अधिक बढ़ गया है। ब्रह्मा जी की स्थापना एरावान होटल और ब्राह्मण मन्दिर में तथा और भी कई स्थानों पर हुई है। इससे सिद्ध होता है कि भारतीयों या सनातन धर्मियों से भी अधिक थाई जनता ब्रह्मा जी के प्रति श्रद्धा रखती है। ब्रह्मा जी की अर्चना करने के साथ ब्रह्मा जी के गुण कर्त्तव्य को अपने जीवन में उतारे तो कम अच्छाई नहीं है। ब्रह्मा जी सृष्टिकर्ता हैं इसका अर्थ हुआ कि वे उन्नतिशील या उन्नति के अभिलाषी हैं। वे संसार एवं समाज को उन्नति एवं प्रसन्नता प्रदान करते हैं। ब्रह्मा जी के चार मुख हैं जो चार महाविहार हैं—

१. मेत्ता (मैत्री), २. करुणा, ३. मुदिता और ४. उपेक्षा। ये चारों विहार या गुण मानव समाज को उन्नति पर ले जाने के साधन हैं। संसार में लोगों को सुख प्राप्ति में सफलता देते हैं। इसलिए ब्रह्मा जी पूरे मानव समाज के हृदय में सदा निवास करें।''

इस लेख में ब्रह्मा जी के प्रति थाईजनों की ऊँची श्रद्धा-भावना का आभास मिलता है।

ऐसे कामनापूरक, सुख प्रदान करने वाले ब्रह्मा जी की अर्चना-पूजा हेतु अग्रसर होने वाले प्राणियों को ब्रह्मा जी अवश्य ही सफलता प्रदान करेंगे। ऐसा मेरा विश्वास है।

इसी से प्रेरणा पाकर ब्रह्मा जी से सम्बद्ध मन्त्र आदि की खोज करके एक पुस्तक का रूप देने की इच्छा जाग्रत हुई। सन् १९९४ में अपनी भारत-यात्रा के प्रसङ्ग में, वाराणसी में पं विन्ध्याचलजी त्रिपाठी (अपने सहाध्यायी) के सुपुत्र आचार्य मृत्युञ्जय त्रिपाठी (प्राध्यापक, मायानन्द गिरि संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी) से भेंट करने उनके घर गया। उनसे इस विषय पर चर्चा हुई। उन्होंने मुझे पूर्ण आश्वासन दिया कि इस कार्य में वे अपना पूरा सहयोग प्रदान करेंगे। ऐसा उन्होंने किया भी। फलस्वरूप यह पुस्तक, ब्रह्मा जी के प्रति रुचि-श्रद्धा एवं विश्वास रखने वाले तथा ब्रह्मार्चन करने वाले या ब्रह्मा जी से सम्बद्ध अनुसन्धान (खोज) करने वाले व्यक्तियों के लिए सहायक अथवा पथ-प्रदर्शक के रूप में प्रस्तुत हो सकी है।

इस परिश्रमसाध्य कठिन कार्य को अभिरुचि (लगन) पूर्वक पूर्ण करने में जो प्रयास आचार्य मृत्युञ्जय जी त्रिपाठी एवं उनके अन्य सहयोगियों ने क्रिया है उसके लिए मेरे सहित सभी ब्रह्मानुयायी भक्तजन उनके सधन्यवाद आभारी हैं।

दिनांक– २ अप्रैल, १९९७ ई०
२४८ सोइसाराफी–२
इसराफाक रोड–५
बैंकाक– १०६०० (थाईलैण्ड)

पं० विद्याधर शुक्ल
प्रधान हिन्दू पुरोहित, थाईलैण्ड
फोन– (०६६२) ४३८४०२५
फैक्स (०६६२) ४३७२३१३

भूमिका

निगमागमबौद्धानां स्त्रोतांस्यन्यानि वै तथा।
समाहृत्याथ संस्कृत्य राष्ट्रभाषाविभूषिता॥

इयं देवाधिदेवस्य पद्मयोनेर्जगत्पतेः।
मृत्युञ्जयेन रचिता ब्रह्मणोऽर्चनपद्धतिः॥

सन् १९९० के अपने बैंकाक (थाइलैण्ड) प्रवासक्रम में, मैं वहाँ स्थान-स्थान पर ब्रह्मा जी की पूजा-अर्चना देखकर, आश्चर्यचकित रह गया। उस देश में श्रीब्रह्माजी की पूजा उतने ही व्यापक रूप में होती है जैसे हमारे यहाँ (भारतवर्ष में) घर-घर में हनुमान् या शिव की पूजा होती है।

हमारे भारतीय वाङ्मय में भी बृहद्देवतात्रयी में ब्रह्मा जी प्रथम (मुख्य) स्थान पर ही वर्णित हैं। परन्तु आज अपने देश (भारत) में उनको महत्त्वहीन और अन्य देशों में प्रमुख उपास्य देवता, सर्वाभीष्टप्रदाता एवं आशुतोष देव के रूप में इतने उच्च स्तर पर समादृत देखकर मेरे मन में उनके महत्त्व, उनकी उपासना पद्धति एवं उपर्युक्त रहस्य को जानने की प्रबल जिज्ञासा हुई।

१९९४ ई० में, थाईलैण्ड के प्रमुख एवं प्रतिष्ठित हिन्दू-पुरोहित पण्डित श्री विद्याधर शुक्ल, जो मूलतः भारतीय हैं, वाराणसी आये। वे भी ताइवान (फारमोसा), थाइलैण्ड, चीन आदि देशों में ब्रह्मार्चन की इस प्रबल अभिरुचि तथा प्रवृत्ति से, मेरी ही तरह, प्रभावित थे। अतः वे भारतीय कर्मकाण्ड में ब्रह्मदेव के महत्त्व एवं उनकी उपासना पद्धति का प्रकरणबद्ध रूप में अभाव देखकर चिन्तित ही नहीं थे, अपितु अपने स्तर से इस पद्धति के उद्धार हेतु सचेष्ट एवं बद्धपरिकर भी थे। वे मेरे पूज्य पिताजी के सहाध्यायी रहे हैं और उनका मुझ पर पितृतुल्य स्नेह है। इस विषय पर हम दोनों में विशद चर्चा हुई तथा

ब्रह्मार्चनसम्बन्धी समस्या के समाधान हेतु प्रयत्न करने का निश्चय हुआ। फलस्वरूप, आज तीन वर्ष बाद, पं० शुक्लजी के सतत प्रोत्साहन एवं प्रेरणा से ब्रह्मार्चन का यह शास्त्रानुकूल एवं विद्वज्जनसम्मत छोटा सा संग्रह सर्वजन सुलभ किया जा रहा है।

आदिदेव ब्रह्मा के विषय में शास्त्र-प्रमाण

सङ्कल्प के अनुसार, हमने सर्वप्रथम इन आदिदेव ब्रह्मा के विषय में भारतीय वाङ्मय में, विशेषतः वेद, पुराण, रामायण, महाभारत बौद्ध एवं जैन साहित्य में कतिपय पुष्ट साक्ष्य खोज निकाले। बाद में तदनुसार ही हमने शास्त्रसम्मत ब्रह्मार्चन पद्धति का एक आकार निर्धारित किया। हम उन साक्ष्यों में से सर्वप्रथम वैदिक साक्ष्यों का निरूपण करना चाहते हैं।

वेद— वैदिक साहित्य में, बृहद्देवतात्रयी के निरूपण में आदिदेव ब्रह्मा का सर्वप्रथम स्थान माना गया है। वेदों के अनुसार, सृष्टि के प्रारम्भ में, जब सर्वत्र जल ही जल था, देवताओं में श्रेष्ठ ब्रह्मा जी प्रादुर्भूत हुए। उन्होंने ही, आगे चलकर, अनेक लोकों, देवसमूहों तथा विविध जलचर एवं स्थलचर प्राणियों की सृष्टि (रचना) की। अतएव वे (ब्रह्मा) ही 'जगत्स्रष्टा' के रूप में प्रसिद्ध हुए। वेदों में इस सृष्टिकर्ता देवता के लिये 'विश्वकर्मन्', 'ब्रह्मणस्पति', 'हिरण्यगर्भ' शब्दों का प्रयोग किया गया है, ब्रह्मा को परब्रह्म परमात्मा के रूप में स्वीकार किया गया है, जिसका आविर्भाव सर्वप्रथम हुआ। जैसा कि लिखा है—

"ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव, विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।"

(मुण्डक० १/१)

ऋग्वेद के हिरण्यगर्भसूक्त (१०/१२१) में प्रथमपूज्य ब्रह्मा ने, शतपथ ब्राह्मण के अनुसार, लोकहित में मत्स्य, कूर्म, वराह आदि अवतार धारण किये थे। वायुपुराण एवं ब्रह्माण्डपुराण जैसे प्राचीन पुराणों में भी इन प्रसङ्गों का वर्णन मिलता है। सभी माङ्गलिक कार्यों में इनके स्मरण एवं पूजन का विधान कहा गया है। आज भी

सर्वतोभद्र, लिङ्गतोभद्र, वास्तुमण्डल आदि में इनकी प्रधानता, यज्ञोपवीत की ग्रन्थियों में ब्रह्मग्रन्थि की प्रतिष्ठा, यज्ञों में ब्रह्मा नामक ऋत्विक् का महत्त्व तथा उपासना हेतु ब्राह्ममुहूर्त की श्रेष्ठताबोधन से ब्रह्मा का महत्त्व स्पष्ट है।

यही ब्रह्मा 'नारायण', 'पुरुष' या 'महान्' आदि नामों से शास्त्रों में विदित हैं। अतएव, ऋग्वेद का पुरुषसूक्त एवं हिरण्यगर्भसूक्त, यजुर्वेद का विश्वकर्मन्सूक्त, अथर्ववेद का ज्येष्ठ ब्रह्मसूक्त इन्हीं ब्रह्मदेव के सूक्त प्रमाणित होते हैं। साथ ही वहाँ विश्वकर्मन्सूक्त को रुद्रसूक्त से पहले स्थान दिया जाना भी देवों में ब्रह्मा की श्रेष्ठता सिद्ध करता है।

जगत्स्रष्टा ब्रह्मा मानसिक सङ्कल्प से प्रजापतियों को उत्पन्न कर उनके द्वारा सृष्टि करते-कराते रहते हैं। १. मरीचि, २. अत्रि, ३. अङ्गिरा, ४. पुलस्त्य, ५. पुलह, ६. क्रतु, ७. भृगु, ८. वसिष्ठ, ९. दक्ष एवं १० कर्दम— ये दश प्रजापति हैं। नारद, रुद्र, धर्म, स्वायम्भुव मनु एवं काम आदि इन्हीं के पुत्र हैं। सभी देव ब्रह्माजी के पौत्र हैं। अत: ये (ब्रह्मा) 'पितामह' नाम से प्रसिद्ध हैं। ब्रह्मा, देव, दानव, यक्ष, राक्षस, किन्नर— सभी के पितामह हैं। इतने पर भी, सृष्टिरचना के कारण धर्म के ही पक्षधर हैं। देव, दानव, मानव— ये सभी समस्या (सङ्कट) ग्रस्त होने पर इन्हीं की शरण में जाते हैं तथा मनोऽभिलषित वर या समाधान प्राप्त करते हैं।

पुराण— विन्ध्य पर्वत द्वारा सूर्य के मार्ग का अवरोध, तारकासुर, हिरण्यकशिपु, रावण आदि दुष्टाधिराजों से तत्कालीन जनों को छुटकारा, ब्रह्मा जी की शरण में जाने से ही मिला है— ऐसा अनेक पुराणों में यथा प्रसङ्ग साक्ष्य मिलता है। स्कन्दपुराण का अभीष्टद ब्रह्मस्तव, मत्स्यादि पुराणों में वर्णित शक्र आदि देवताओं द्वारा की स्तुति का आधार भी ब्रह्मा ही हैं। पद्मपुराण के अनुसार, शिव और विष्णु ने पुष्करयज्ञ कें समय, तथा राम ने पुष्कर-क्षेत्र के दर्शन के समय ब्रह्मा की स्तुति की है। आदि दैत्य हिरण्यकशिपु ने ब्रह्माराधन हेतु एक श्रेष्ठ स्तोत्र की रचना की थी, जिसमें ब्रह्मा को परब्रह्मरूप में स्वीकार किया है।

आगम— आगमों में शैव एवं शाक्त आगमों की तरह ब्रह्मा की पूजा-आराधना करने वाला भी एक विशिष्ट सम्प्रदाय रहा है जो 'वैखानसआगम' नाम से प्रसिद्ध था। सभी आगमसम्प्रदायों में इस वैखानस आगम की मान्यता है। शाङ्कर सम्प्रदाय में, प्रायः सभी पूजा-उपासनाओं में, इस सम्प्रदाय को विशेष प्रामाणिक माना गया है। इस सम्प्रदाय के नाम से वैखानसश्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, स्मार्तसूत्र तथा वैखानस एवं प्रजापति स्मृतियाँ भी प्राप्त होती हैं। मध्व सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक ब्रह्मा ही माने गये हैं।

ब्रह्मा का जन्म— स्वयम्भू रूप में हिरण्यगर्भ से सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा की उत्पत्ति का वर्णन मिलता है। शाक्त ग्रन्थों में— भगवती महालक्ष्मी ने ब्रह्मा एवं लक्ष्मी की सृष्टि की, तथा परा प्रकृति द्वारा चैतन्य पुरुष के भेद के रूप में ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई— ऐसी भी वहाँ प्रस्तुति मिलती है। वैष्णव ग्रन्थों में— विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति का वर्णन मिलता है।

ब्रह्मा का रूप-रंग तथा आकार— ब्रह्मा का रंग पीतमिश्रित रक्तवर्ण कहा गया है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में— ब्रह्मा के स्वरूप एवं आभूषणादि का रहस्य विशद रूप से स्पष्ट किया गया है। तदनुसार इनके पूर्वमुख को ऋग्वेदमय, दक्षिण मुख को यजुर्वेद मय, पश्चिम को सामवेदमय तथा उत्तर को अथर्ववेदमय कहा गया है।

हाथ में कमण्डलु— इसी प्रकार उनकी चारों भुजाओं को चारों दिशाओं का प्रतीक बताया गया है। जल संसार का सार है और यह समग्र संसार जल पर ही आधृत है। सभी स्थावर जङ्गम प्राणी जल के आधार पर ही जीवन धारण करते हैं। अतएव जल के प्रतीक के रूप में ब्रह्मा अपने हाथ में जलपूर्ण कमण्डलु धारण करते हैं।

रुद्राक्षमाला एवं कृष्णाचर्म— उनके हाथ में रुद्राक्ष की माला है, जो क्षण से आरम्भ कर कल्प तक काल-गणना की प्रतीक है। विविध कर्मों के योग से यज्ञ का अनुष्ठान होता है। यज्ञ में बहुत से कर्म तो अतिउदात्त होते हैं तो कुछ सामान्य भी जिन्हें 'शुक्लाशुक्ल'

कहा गया है। अतएव यज्ञ के प्रतीक के रूप में ब्रह्मा जी कृष्ण चर्म धारण करते हैं, जिसका आधा भाग श्वेत तथा आधा भाग कृष्ण है।

जटा-जूट— संसार में उत्पन्न वनस्पतियाँ तथा ओषधियाँ ही उसकी शोभा बढ़ाती हैं तथा समग्र प्राणियों के लिये उपकाररत रहती हैं। इन ओषधियों के प्रतीकस्वरूप ब्रह्मा के शिर पर उनकी जटाएँ शोभित रहती हैं। संसार के प्रकाशित करने वाले सूर्य, चन्द्र तथा ज्योतिश्चक्र और बुद्धि को प्रकाशित करने वाले अनेक विद्यास्थान भगवान् ब्रह्मा के आभरण के रूप में उनके ग्रीवा, कण्ठ एवं वक्षःस्थल तथा बाहुओं में अलंकृत हुए हैं।

ब्रह्मा का वाहन तथा आसन— संसार में भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यम्— ये सात लोक हैं। इन सभी लोकों का प्रतीक ब्रह्माजी के रथ के स्थान में उनका वाहन 'हंस' कहा गया है जिसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग में सातों लोक परिकल्पित हैं।

भगवान् विष्णु की नाभि से उत्पन्न कमल ही ब्रह्मा जी का 'पद्मासन' है। उस कमल की कर्णिकाओं को सुमेरु पर्वत का स्वरूप माना गया है।

ब्रह्मा के चार मुख— आरम्भ में ब्रह्मा जी के एक मुख का ही वर्णन मिलता है। पुराणों में उन्हें पञ्चमुख होने तथा शिव द्वारा उनके पञ्चम मुख-छेदन की भी कथा आती है। (द्र० महाभागवत उपपुराण, अ० ४२/५४) अन्यत्र स्थान-स्थान पर इनके चार मुख तथा चार भुजाओं का भी वर्णन मिलता है। इनके चतुर्मुख होने के सम्बन्ध में अनेक कथानक प्रचलित हैं। जैसे—

१. विष्णु के नाभिकमल पर स्थित होकर चारों दिशाओं में देखने की जिज्ञासा ने उनको चतुर्मुख बना दिया। (द्र० श्रीमद्भागवत ३/८/१६)।

२. भगवती की भीषणाकार मूर्त्ति से भयभीत हुए ब्रह्मा चारों तरफ अपना मुख फिराते गये। (द्र० श्रीमहाभागवत उपपुराण ३/४२)।

३. अपने द्वारा ही रचित अर्थात् पुत्री शतरूपा के रूपलावण्य से मुग्ध होकर उसके रूपदर्शन की लालसा ने उन्हें चतुर्मुख बना दिया। (मत्स्य पुराण अ० ३/३६-३८)।

पुराणों में कहीं यह द्विभुज, कहीं चतुर्भुज तथा कहीं अष्टभुज रूप में वर्णित हैं।

ब्रह्मा की पत्नी— इनकी मुख्य पत्नी सावित्री अथवा तान्त्रिक वाङ्मय के अनुसार डाकिनी शक्ति है। गायत्री यज्ञसम्पादनहेतु गृहीत तथा सरस्वती विष्णु द्वारा प्रदत्त पत्नी हैं।

ब्रह्मा का वासस्थान— शास्त्रों में सुमेरु पर्वत पर इनकी ब्रह्मसभा एवं ब्रह्मलोक में, मानवशरीर के षट्चक्रों के मणिपुरचक्र में तथा विष्णु के नाभिकमल पर इनका वासस्थान वर्णित है।

वाहन— इनका वाहन हंस या हंसचालित रथ बताया गया है। इनके ध्वज पर हंस का चिह्न अंकित है, अतः ये 'हंसध्वज' भी कहलाते हैं।

ब्रह्मा के कार्य— शास्त्रों में सृष्टि रचना, पौरोहित्य, विवादों का समाधान, भक्तों को वरदान, वेदशास्त्रादि की रचना, आदि इनके कर्तव्य वर्णित हैं। इन्होंने काशी, गया, पुष्कर, प्रभास, बिन्दुसर, विठूर आदि स्थानों पर यज्ञ तथा भारत के कतिपय अन्य स्थानों पर तपस्या की है। और इन्द्र, विरोचन, वसिष्ठ आदि ऋषियों एवं देवताओं को समय-समय पर उपदेश किया है। इनके ही मुखों से चारों वेद, उपवेद, नाट्यशास्त्र, होता, उद्गाता, अध्वर्यु एवं ब्रह्मादि ऋत्विक् प्रकट हुए। इतिहास, पुराणरूप पञ्चम वेद का प्रादुर्भाव भी उन्हीं के मुख से माना गया है। साथ ही षोडशी, उक्थ्य, अग्निष्टोम, वाजपेयादि यज्ञ, विद्यादान, तप एवं सत्य धर्म के चार पाद, तथा वृत्ति सहित चार आश्रम प्रकट हुए। यज्ञकर्म में प्रयुक्त होने वाले पलाश वृक्ष को भी ब्रह्मा का स्वरूप माना गया है। इसी तरह अथर्ववेद को 'ब्रह्मवेद' कहा जाता है।

ब्रह्मा के अंशावतार— ऋक्षराज जामवन्त एवं कृष्णपुत्र अनिरुद्ध इनके अंशावतार माने जाते हैं। ब्रह्मा पञ्चतत्त्वों में 'जलतत्त्व' तथा पच्चीस तत्त्वों में 'महत्तत्त्व' कहलाते हैं।

ब्रह्मा की आयु— ब्रह्मा की आयु को शास्त्रों में 'पर' कहा गया है। जो मानव (सौर) मान से ३ नील, १० खरब, ४० अरब वर्ष

होती है। जिसमें वर्तमान विक्रमसंवत् २०५४ (सन् १९९७) में १५ नील, ५५ खरब, २१ अरब, ९७ करोड़, २९ लाख, ४९ हजार ९९ वाँ वर्ष चल रहा है।

ब्रह्मा की क्रमिक अवमानना के विषय में पुराणों का साक्ष्य— वैष्णव पुराणों के अनुसार ब्रह्मा आदिप्रजापति हैं तथा सृष्टिकर्ता के रूप में प्रथम पूज्य देव हैं। वे वैष्णव ग्रन्थों में नारायण (विष्णु) की नाभि से उत्पन्न माने गये हैं। तथा शैव पुराणों में उन्हें मिथ्याभाषी, इन्द्रियलोलुप, कामी तथा रुद्र द्वारा उनका नियमन भी दिखाया गया है। इसके लिए इन पुराणों ने शतपथ ब्राह्मण में वर्णित ब्रह्मा का उषा के प्रति मोह तथा मृगव्याधप्रसङ्ग को ही ब्रह्मा के सन्ध्या-सरस्वती प्रसङ्ग के रूप में वर्णित किया है। इस प्रकार की पुत्री के प्रति अनुरक्ति ब्रह्मा को शिव का कोपभाजन बनाती है। सरस्वती किंवा सन्ध्या के प्रति मोह, कृष्णपरीक्षा, सती-विवाह और वरुण के यज्ञ के समय स्खलन, विष्णु से विवाद में असत्य कथन, अपने पञ्चम मुख से दैत्यों को प्रोत्साहन आदि—पुराणों में वर्णित ये कथाएँ ही ब्रह्मा के यदा-कदा चारित्रिक प्रमाद (भूलों) को प्रमाणित करती हैं। तथा इन्हीं के कारण ब्रह्मा को समय-समय पर शिव, मोहिनी, पुत्र नारद तथा पत्नी सावित्री से शापग्रस्त होना पड़ता है। ऐसे अवसरों पर शिव शाप भी देते हैं और उनका शिरश्छेदन भी करते हैं। शिव, मोहिनी तथा उनके विष्णुभक्त पुत्र नारद अपने शाप द्वारा ब्रह्मा को, कुछ निश्चित कालावधि के लिये, देव समाज में अपूज्य घोषित कर देते हैं।

पुष्कर क्षेत्र के महायज्ञ में पत्नी सावित्री के विलम्ब से पहुँचने पर शिव एवं विष्णु द्वारा समर्थित गायत्री के साथ यज्ञ-सम्पादन से क्षुब्ध अपनी पत्नी के ही शापवश अपूज्यता के प्रसङ्ग पुराणों में वैष्णव तथा शैव सम्प्रदायों के अतिक्रमण के ही परिणाम हैं। इन प्रसङ्गों में, ब्रह्मा जी पर जिन चारित्रिक दुर्बलताओं का आरोप किया गया है, वे साधारणत: मानवीय दुर्बलताएँ ही हैं, जिनका आज भी मानव के मान मर्दन में सहारा लिया जाता है।

पञ्चदेवपूजा एवं ब्रह्मा के प्रति उदासीनता

इन उपर्युक्त शाप-प्रसङ्गों के कारण, कम से कम भारतवर्ष में तो, ब्रह्मा जी की प्रत्यक्ष पूजा बन्द हो ही गयी तथा जहाँ कभी ब्रह्मा का स्वतन्त्र सम्प्रदाय था वहीं *विष्णु* तथा *शिव* के साथ साथ विष्णुस्वरूप *सूर्य* तथा शिव-परिवार के पार्वती (*शक्ति*) एवं *गणेश* के भी स्वतन्त्र सम्प्रदाय खड़े हो गये। इस स्थिति में, देवपूजा-विधि से ब्रह्मार्चनसम्बन्धी अंशों का या तो लोप हो गया या फिर शापभय से उन पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। पश्चात्कालीन साहित्य में ब्रह्मा को भी इन उपर्युक्त *पञ्चदेवों* या *बुद्ध* आदि के परिकर के रूप में या इनके प्रेरक या स्तुतिकर्ता के रूप में दिखाया गया है।

बौद्ध एवं जैन धर्मों में ब्रह्मा जी का महत्त्वपूर्ण स्थान

बौद्ध साहित्य— बौद्ध साहित्य में बुद्ध के जन्म-प्रसङ्ग में ब्रह्मा की उपस्थिति द्विभुज रूप में वर्णित है।

समग्र बौद्ध साहित्य में ब्रह्मा के अनेक लोक एवं रूप दिखाये हैं। वहाँ *२० ब्रह्मलोकों* की कल्पना की गयी है। जिनमें ९ सामान्य ब्रह्मलोक हैं, ५ शुद्धावास ब्रह्मलोक हैं, ४ अरूपी-ब्रह्मलोक हैं तथा २ आसन्नसत्त्व एवं बेहप्फल (वृहत्फल) नामक ब्रह्मलोक हैं।

संयुक्त निकाय में छह ब्रह्माओं के नाम मिलते हैं— १. सहम्पति ब्रह्मा, २. बक-ब्रह्मा, ३. सुब्रह्मा, ४. शुद्धावास प्रत्येक ब्रह्मा, ५. तुदु प्रत्येक ब्रह्मा एवं ६. सनतकुमार ब्रह्मा। बक-ब्रह्मा-सुत्त में बहत्तर (७२) ब्रह्माओं की संख्या बतायी गयी है।

सहम्पति ब्रह्मा को बौद्ध धार्मिक परम्परा में विशेष सम्मान दिया गया है। उपदेश देने के प्रति भगवान् बुद्ध के उदासीन होने पर सहम्पति-ब्रह्मा ने ही उपदेश के लिये उन्हें प्रेरित किया था। भगवान् द्वारा धर्म के गौरव मानकर विहार करने की बात सोचने पर सहम्पति ब्रह्मा ने आकर भगवान् की बात का समर्थन करते हुए कहा था कि यही बुद्धों की परम्परा है।

सहम्पति–ब्रह्मा सद्धर्म में सहायक हुए। सहम्पति–ब्रह्मा सङ्घ के प्रति श्रद्धालु थे। वे भिक्षुओं के शान्तचित्त और एकाग्र रहने की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि एकान्त-सेवन करना चाहिये। यदि मन न लगे तो सङ्घ में मिलकर संयत और स्मृतिमान् होकर विहार करना चाहिये।

बक–ब्रह्मा के विषय में भगवान् बुद्ध ने बताया कि वे ब्रह्मलोक में शीलव्रत के कारण उत्पन्न हुए। उन्होंने पहले प्यासे को पानी पिलाया था, गङ्गा में बहते हुए को बचाया था, नाव को सर्पराज से मुक्त कराया था, इसी पुण्य के कारण वे ब्रह्मलोक में ब्रह्मा के रूप में उत्पन्न हुए।

जैन साहित्य— जैन परम्परा में तीर्थङ्कर शीतनाथ या नवम दिक्पाल के रूप में ब्रह्मा का निरूपण मिलता है। इसी तरह जैन परम्परा का ब्रह्मशान्ति यक्ष भी ब्रह्मा के समान है। निर्वाणकलिका एवं आचारदिनकर जैसे ग्रन्थों में ब्रह्मशान्ति का विस्तृत वर्णन मिलता है। मात्स्यी ब्राह्मी शान्ति नामक ग्रन्थ भी देखने को मिलता है।

ब्रह्मा की प्रतिमाएँ— पुष्कर आदि कुछ क्षेत्रों को छोड़कर ब्रह्मा जी की प्रतिमा के पूजन का धार्मिक मान्यता में निषेध हो गया, तो भी रूपमण्डन, प्रतिमामण्डन, शिल्परत्न, चित्रमण्डन, काश्यप-शिल्प, मत्स्यपुराण, विष्णुधर्मोत्तरपुराण, अग्निपुराण, भविष्यपुराण, बृहत्संहिता आदि ग्रन्थों में ब्रह्मा को चतुर्मुख, चतुर्भुज, पद्मासनस्थ, हंसारूढ रथारूढ प्रजापति रूप में वर्णित किया गया है। उनका द्विभुज तथा अष्टभुज मूर्तियाँ भी पायी जाती हैं तथा उनका जटायुक्त, श्मश्रुयुक्त या श्मश्रुरहित रूप भी मिलता है। चतुर्मुख ब्रह्मा का पीछे का चौथा मुख स्पष्ट न दिखायी देने के कारण ब्रह्मा की कतिपय मूर्तियाँ त्रिमुख या त्रिमूर्ति दीखती हैं। भारत में त्रिमुख ब्रह्मा के डाकटिकट भी जारी किये जा चुके हैं। अतः, अब ब्रह्मार्चन की व्यापकता में कोई सन्देह नहीं रह गया; क्योंकि ब्रह्मा की मूर्तियाँ अब किसी न किसी रूप में विश्व के अनेक भागों में प्राप्त हो चुकी हैं।

ब्रह्मा के वास-स्थान एवं रथयात्रा-प्रसङ्ग

पुराणों में ब्रह्मा के १०८ वास स्थानों का तथा उसकी पूजा पद्धतियों में रथयात्रा प्रसङ्गों का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त म्यामार (बर्मा) देश तथा भारत में विश्व की विशालतम नदियों में अपना स्थान रखने वाली *ब्रह्मपुत्र* भी ब्रह्मा के एक विशेष महत्त्व को दरसाती प्रतीत होती हैं। इन सबका रहस्य जानना बहुत शोध-श्रम एवं व्यय-साध्य है। इसे आगामी काल में कोई न कोई विद्वान् अवश्य पूर्ण करेगा— ऐसा विश्वास है।

निष्कर्ष— भगवान् ब्रह्मा वेदज्ञानराशिमय, शान्तचित्त, प्रसन्न हृदय, सृष्टिरचयिता, बुद्धि एवं बल से प्राणियों के रक्षक, सञ्चालक तथा त्रिदेवों में श्रेष्ठ हैं। वे ज्ञान, विद्या, धर्म, यज्ञ तथा समस्त शुभकर्मों के प्रतीक रूप में लोकपितामह होकर सभी प्राणियों के कल्याण की कामना करते हैं। इसीलिये प्रायः किसी भी रूप में किसी प्रकार का दिव्य जप-तप करने वाले भक्तों के पास वे उपस्थित होकर उनकी कामनाओं को पूर्ण करते हैं।

मेरुतन्त्र या **रुद्रयामल** जैसे तान्त्रिक ग्रन्थों के मन्त्र, अग्नि पुराण का "ॐ ब्रह्मणे नमः" मन्त्र या वेदोक्त गायत्रीमन्त्र ब्रह्मा के ही मन्त्र हैं, जिनका सङ्केत इस ग्रन्थ में यथास्थान किया गया है।

ब्रह्मा के आराधक— सभी देवता, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, नाग, किन्नर, राक्षस या मानव आदि इनकी पूजा-आराधना करते हैं। सम्पूर्ण जगत् ब्रह्ममय है तथा ब्रह्मा में ही स्थित है। अतः ब्रह्मा सभी के पूज्य हैं। सार्वभौम राज्य, स्वर्ग एवं मोक्ष— ये तीनों पदार्थ इनकी पूजा से प्राप्त हो सकते हैं। अतएव सदा प्रसन्न हृदय एवं शान्त मन से यावज्जीवन नियमपूर्वक ब्रह्मा जी की आराधना करनी चाहिये। भविष्यपुराण ब्रह्मपर्व (के १७-१८ अध्याय) में तथा स्कन्दपुराण के प्रभासखण्ड में ब्रह्मार्चन का माहात्म्य विस्तृत रूप से वर्णित है।

ब्रह्मार्चन-परम्परा की प्राचीनता— भविष्यपुराण, वायुपुराण, स्कन्द पुराण, तथा ब्रह्माण्ड पुराण में ब्रह्मा जी को परब्रह्मस्वरूप

तथा त्रिदेवों में, समकक्ष ही नहीं, प्रथम माना गया है। भले ही अन्य एक पक्षपाती ग्रन्थों में इन्हें उनसे हेय प्रतिपादित किया हो। पुत्री के प्रति आसक्ति आदि वैज्ञानिक घटनाएँ प्राकृतिक घटनाएँ हैं, जिनका सङ्केत वेदों में है। पुराणों में इनका उपयोग अपने अपने ढंग से किया गया है।

विदेशों में ब्रह्मार्चन— मध्य जावा के प्राम्बमान के मन्दिर में ब्रह्मा जी के प्राचीन मन्दिर का उल्लेख गीता प्रेस, गोरखपुर के "कल्याण" के हिन्दू संस्कृति अङ्क में मिलता है। किन्तु आधुनिक दक्षिणपूर्व एशिया, विशेषतः ताइवान, तथा थाइलैण्ड में ब्रह्मार्चन एवं ब्रह्ममूर्ति-निर्माण की अभिरुचि दीखती है। अब तक भारतीय ज्ञान-विज्ञान पाश्चात्य पद्धति से देखा जाता रहा है; किन्तु आज ब्रह्मार्चन की परम्परा दक्षिणपूर्व एशिया से पुष्पित पल्लवित वटवृक्ष का रूप धारण करने को उद्यत है।

ब्रह्मवंशावतंस माननीय पण्डित श्री विद्याधर शुक्ल जी की सत्प्रेरणा से संगृहीत यह *ब्रह्मार्चनपद्धति* ग्रन्थ ब्रह्मार्चन की परम्परा के विकास में महत्त्वपूर्ण आधारशिला है।

समर्पण—उपर्युक्त सन्दर्भों से शोभित इस पद्धति में पूजनविधि, तत्सम्बन्धी मन्त्र एवं स्तोत्रों के संग्रह और अर्थसहित ब्रह्ममाहात्म्य के रूप में ब्रह्मा और उनकी सभा, ब्रह्ममूर्ति, व्रत एवं पूजनपद्धति का वर्णन किया गया है। स्तोत्र, पद्धति, कवच, हृदय तथा नाम को पञ्चाङ्गपूजन का आधार बनाया गया है। नाम के लिए शतनाम ही सम्भव हो सका है। सहस्रनाम अभी सुलभ नहीं है, यदि सम्भव हुआ तो आगामी संस्करणों में समाविष्ट करने का यत्न होगा।

ब्रह्माजी के आशीर्वाद से उनके भक्त तथा यह समस्त सृष्टि अभ्युदय को प्राप्त हो— इसी कामना के साथ यह रचना *स्व० पं० विन्ध्याचल त्रिपाठी* एवं मूर्त्तिमान् *आचार्य श्री शुक्लजी के करकमलों में सादर समर्पित है।*

आभार प्रदर्शन— प्रस्तुत ग्रन्थ की रूपसज्जा में सहयोगी ग्रन्थकारों, तथा पं० आद्याप्रसाद द्विवेदी श्री गयाप्रसाद सिंह, आचार्य

रमेशचन्द्र पाण्डेय एवं मित्रवर गोपाल सिंह सरीन के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए मैं उनकी अभीष्टसिद्धि के हेतु देवाधिदेव जगत्स्रष्टा ब्रह्मा जी के प्रति कोटिशः नतमस्तक हूँ।

इस पुस्तक के मुद्रक **साधना प्रेस**, वाराणसी के अधिकारी (धर्मकीर्त्ति शास्त्री) का तथा प्रकाशक **नवशक्ति प्रकाशन**, वाराणसी के लोकेश आदि त्रिपाठी-बन्धु का विशेष आभारी हूँ जिनके श्रम और सहयोग से यह प्रणामाञ्जलि मूर्तरूप प्राप्त कर सकी है।

इस दिशा में उत्साहवर्धन कर मेरी स्वसा श्रीमती शान्ति तिवारी ने जो आत्मबल प्रदान किया है वह विशेष उल्लेखनीय है।

२० जुलाई (गुरुपूर्णिमा) १९९७ ई०
'विन्ध्यविला' जे० १३/२४ के०,
चौकाघाट, वाराणसी-२२१ ००२

विद्वच्चरणरेणु
मृत्युञ्जय त्रिपाठी

ब्रह्मार्चनपद्धति का

विषयानुक्रम



देवाधिदेवस्य ब्रह्मणः

दैनिकपूजाविधिः

॥ स्तुतिः ॥

मूर्तिः स्मर्तृतमोहरा, सहचरी वाचां परा देवता,
व्याहाराः श्रुतयः कुटुम्बकमिदं विश्वं चरस्थावरम्।
यस्यैतच्छ्रुतिमूलमूलकतया सन्दर्शितप्रक्रियम्,
स्वारम्भं भगवन्तमन्तरहितं ब्रह्माणमीडामहे॥

[जिनका स्वरूप ध्यानियों के तमोगुणरूपी अन्धकार को नष्ट करता है, वाग्देवी सरस्ती जिनकी गृहिणी है, जिनके मुख से निःसृत वाणी ही चारों वेद हैं, जिनका यह समस्त चराचर विश्व कुटुम्ब (परिवार) है, जिन्होंने अपने समग्र कार्य वेदों से प्रमाणित कर वेदों में प्रामाणिकता प्रदर्शित की, जिन्होंने केवल अपनी शक्ति के बल पर यथेच्छ सृष्टि-रचना की, ऐसे अन्तरहित (अनन्त) देवाधिदेव भगवान् ब्रह्मा की हम स्तुति करते हैं॥]

देवाधिदेव ब्रह्मा की

दैनिक पूजा-विधि

[शास्त्र का विधान है कि आराधक को अपने अभीष्ट देवता से वरप्राप्ति के लिये, सर्वप्रथम षोडशोपचार विधि से उस देवता की, शुद्धचित्त एवं पवित्र हृदय रखते हुए, सङ्कल्पपूर्वक पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर मन्त्र का जप या स्तोत्र का पाठ, निश्चित सङ्ख्या में आरम्भ करना चाहिये। अतः यहाँ सर्वप्रथम देवाधिदेव ब्रह्मा जी का दैनिक पूजा-क्रम शास्त्रविधिपूर्वक लिखा जा रहा है—]

आराधक को अपनी प्रातःकालिक नित्यक्रिया सम्पन्न कर स्नानादि से शुद्ध होकर शुद्ध वस्त्र धारण कर, अधोलिखित श्लोक से देवाधिदेव ब्रह्मा जी को प्रणाम करना चाहिये—

प्रणति—

सृजति कमलसंस्थो दृश्यमात्रं सदा यो,
निखिलनिगमतत्त्वं ज्ञानिनां च प्रधानम्।
अपरिहतसमाधिं सत्यसङ्कल्पमेतम्,
परिविमलचरित्रं नौमि तं हंसवाहम्॥

ध्यान—

दिव्यं रूपं सदा ध्यायेद् ब्रह्माणं तेजसाकुलम्।
सावित्रीशक्तिसहितं परमात्मानमीश्वरम्॥

चित्तशुद्धि— पुनः पूजामण्डप के बाहर खड़े होकर स्वकीय त्रिविध पाप-नाश हेतु ये मन्त्र पढ़ने चाहिये—

ॐ देव! त्वत्प्रकृतं चित्तं पापाक्रान्तमभून्मम।
तन्निःसरतु चित्तान्मे पापं हुं फट् च ते नमः॥
सूर्यः सोमो यमः कालो महाभूतानि पञ्च च।
एते शुभाशुभस्येह कर्मणो नव साक्षिणः॥

द्वारपूजन— मण्डप (पूजागृह) द्वार पर अधोलिखित मन्त्रों को बोलते हुए, पूजन करे—

गं गणेशाय नमः, ऊर्ध्वे गणपतिं पूजयामि।

वं वटुकाय नमः, वामे वटुकं पूजयामि।

क्षं क्षेत्रेशायनमः, दक्षिणे क्षेत्रेशं पूजयामि।

यं योगिनीभ्योनमः , अधोभागे योगिनीः पूजयामि।

गं गङ्गायै नमः, वामपार्श्वे गङ्गां पूजयामि।

यं यमुनायै नमः, दक्षिणपार्श्वे यमुनां पूजयामि।

लं लक्ष्म्यै नमः, ऊर्ध्वे लक्ष्मीं पूजयामि।

ॐ ब्रह्माण्याद्यष्टमातृभ्यो नमः, देहल्यामष्टमातृः पूजयामि।

आसनपूजन— पुनः आराधक वामद्वार का स्पर्श न करता हुआ पूजा-गृह में प्रवेश करे। आसन विछाकर, अधोलिखित मन्त्रों से, आसन का पूजन करे—

ॐ आधारशक्त्यै कमलासनाय नमः।

ॐ विश्वशक्त्यै नमः।

ॐ महाशक्त्यै नमः।

ॐ कूर्मासनाय नमः।

ॐ योगासनाय नमः।

ॐ अनन्तासनाय नमः।

ॐ परमसुखासनाय नमः।

ॐ आत्मासनाय नमः।

आचमन— पुनः आराधक अधोलिखित मन्त्रों से तीन बार आचमन करे—

ॐ आं ब्रह्मणे लोकाधिपतये नमः।

ॐ आं रक्तवर्णाय ऊर्ध्वलोकपालाय नमः।

ॐ आं पद्महस्ताय हंसवाहनाय नमः।

अब आराधक—अधोलिखित मन्त्र का उच्चारण करते हुए, हस्तप्रक्षालन करे—

"ॐ तत्सद् ब्रह्मणे नमः।"

पवित्रीकरण— अब आराधक आसन पर बैठकर अधोलिखित मन्त्र से अपने शरीर पर तथा पूजनसामग्री पर जल छिड़कते हुए उनका पवित्रीकरण करे—

ॐ पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा॥

अथवा

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थाङ्गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

आसनविनियोग— एतदनन्तर आराधक अधोलिखित मन्त्र बोलते हुए, आसन का विनियोग करे—

ॐ पृथ्वीति मन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः, सुतलं छन्दः, कूर्मो देवता, आसने विनियोगः।

आसनशुद्धि— पुनः यह मन्त्र पढ़कर आसन पर जल छिड़के—

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वञ्च धारय मां देवि! पवित्रं कुरु चासनम्॥

विघ्नोत्सारण— निम्नलिखित मन्त्रों को पढ़कर आराधक अपने चारों ओर पीली सरसों या अक्षत छोड़े—

ॐ अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिसंस्थिताः।
ये चात्र विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया॥
अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतोदिशम्।
सर्वेषामविरोधेन *ब्रह्मणोऽर्चनमारभे*॥

भैरवस्तुति— तब हाथ जोड़कर अधोलिखित मन्त्र से *भैरव की स्तुति* करते हुए उनसे पूजाविधि की निर्विघ्न समाप्ति हेतु निवेदन करे—

ॐ तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्तदहनोपम!
भैरवाय नमस्तुभ्यम्, अनुज्ञां दातुमर्हसि॥

गुरुमण्डलपूजन— अब अधोलिखित मन्त्रों से, मन्त्रों में सङ्केतित दिशाओं में गन्ध, अक्षत एवं पुष्प छोड़े—

ॐ गुरुभ्यो नमः। वामे
ॐ परमगुरुभ्यो नमः। ''
ॐ परमेष्ठिगुरुभ्योनमः। ''
ॐ परात्परगुरुभ्यो नमः। ''
ॐ पूर्वसिद्धेभ्यो नमः। ''
ॐ आचार्येभ्यो नमः। वामे
ॐ गणेशाय नमः दक्षिणे। दक्षिणे
ॐ तत्सद् ब्रह्मणे नमः। सम्मुखे
ॐ वास्तुपुरुषाय नमः। नैर्ऋत्ये

सङ्कल्प— अब आराधक दाहिने हाथ में जल, पुष्प, अक्षत और दक्षिणा द्रव्य लेकर अधोलिखित मन्त्र द्वारा मन में ब्रह्मा जी का ध्यान करते हुए यह सङ्कल्प ले—

"ॐ विष्णवे नमः, विष्णवे नमः, विष्णवे नमः। ॐ अद्य ब्रह्मणो द्वितीयपरार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवश्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशे कलियुगे कलिप्रथमचरणे बौद्धावतारे भूर्लोके अमुकद्वीपे अमुकदेशे अमुकक्षेत्रे अमुकनगरे अमुकग्रामे अमुकनाम्नि अमुक संवत्सरे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकयोगे अमुककरणे अमुकगोत्रः अमुकनामा अहं श्रीब्रह्मदेवप्रसादात् श्रुति-स्मृति-पुराणोक्तफल-प्राप्त्यर्थं ज्ञाताज्ञातकायिक-वाचिक-मानस-सकलपापनिवृत्तिपूर्वकम् अमुककामनापूर्त्यै ब्रह्मार्चनं करिष्ये। तदङ्गत्वेन गौरीगणपत्यादि-पूजनं च करिष्ये।"

एतदनन्तर, आराधक गौरी, गणेश, नवग्रह, षोडशमात्रिका आदि की पूजाएँ, समय एवं प्रयोजन के अनुरूप कर सकता है।

देवता का ध्यान— अब आराधक सर्वप्रथम अपने इष्टदेवता (ब्रह्माजी) का अधोलिखित मन्त्रों से ध्यान करे—

दिव्यरूपं सदा ध्यायेत् ब्रह्माणं तेजसाऽऽकुलम्।
सावित्रीशक्तिसहितं परमात्मानमीश्वरम्॥
चतुर्मुखं महाकायं वनमालाविभूषितम्।

नवीनं नवरूपाढ्यं लोकानामभिलाषदम् ॥

आवाहन— पुनः देवता का आवाहन आराधक इन मन्त्रों से करे—

ॐ भूर्भुवःस्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ ॥

इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत्। पिता नः स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छद् वराँ आविवेश ॥

एह्येहि विप्रेन्द्र पितामहादौ हंसाधिरूढ त्रिदशैकवन्द्य।
श्वेतोत्पलाभासकुशाम्बुहस्त गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते ॥

आसन— तदनन्तर देवता को इन मन्त्रों का उच्चारण करते हुए आसन प्रदान करे—

किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित् कथाऽऽसीत्।
यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा विद्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥
ब्रह्मात्मभू सुरज्येष्ठ परमेष्ठि पितामह।
ब्रह्मन् आसनं दिव्यं दास्येऽहं तुभ्यमीश्वर ॥

सन्निधान— पुनः अधोलिखित मन्त्र द्वारा देवता का सन्निधान करे—

हंसपृष्ठसमारूढ देवतागणपूजित!
ऊर्ध्वलोकपते देव अत्र त्वं सन्निधिं कुरु ॥

प्राणप्रतिष्ठा— विशिष्ट साधक प्राणप्रतिष्ठा के लिये
ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हों ऊं
क्षं सं हं सः ह्रीं ॐ हंसः ब्रह्मणः प्राणाः इह प्राणाः।
ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हों ऊं
क्षं सं हं सः ह्रीं ॐ हंसः ब्रह्मणः जीव इह स्थितः ॥

ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हों ॐ क्षं सं हंसः ह्रीं ॐ हंसः ब्रह्मणः सर्वेन्द्रियाणि इह स्थितानि।

ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हों ॐ क्षं सं हंसः ह्रीं ॐ हंसः ब्रह्मणः वाङ्मनस्त्वक् चक्षुश्श्रोत्र जिह्वा घ्राण प्राण इहागत्य सुखञ्चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।

इसके बाद अधोलिखित मन्त्र द्वारा देवता (ब्रह्मा) को सम्मुखस्थ मूर्ति में **प्राणप्रतिष्ठा** करे—

एतं ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे।
तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिं तेन मामव॥
ब्रह्मणः प्राणाः प्रतिष्ठन्तु स्त्रष्टुः प्राणाः क्षरन्तु च।
अस्यै देव त्वमर्चायै मामहेति च कश्चन॥

पाद्य— पुनः अधोलिखित मन्त्र से पादप्रक्षालनहेतु देवता को पाद्य (जल) प्रदान करे—

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमीजनयन्देव एकः॥
गङ्गादितीर्थसम्भूतं गन्धपुष्पादिभिर्युतम्।
***पाद्यं* ददाम्यहं देव! गृहाणाशु नमोऽस्तुते॥**

अर्घ्य— पुनः आराधक अधोलिखित मन्त्र से देवता को अर्घ्य (पूजा द्रव्य) प्रदान करे—

किंस्विद् वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद् यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन्॥
अष्टगन्धसमायुक्तं स्वर्णपात्रप्रपूरितम्।
***अर्घ्यं* गृहाण मद्दत्तं पद्मयोने नमोऽस्तु ते॥**

आचमनीय— एतदनन्तर आराधक देवता को *आचमन* हेतु जल प्रदान करे—

या ते धामानि परमाणि याऽवमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधा वः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः॥
कर्पूरेण सुगन्धेन वासितं स्वादु शीतलम्।
तोयमाचमनीयार्थं गृहाण परमेश्वर॥

स्नान— तदनन्तर, आराधक देवता को स्नानहेतु अधोलिखित मन्त्रोच्चारणपूर्वक जल प्रदान करे।

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम्।
मुह्यन्त्वन्ये अमितः सपत्नां इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु॥

हंसपृष्ठसमारूढं देवतागणपूजितम्।
स्नापयामि अहं देवं ब्रह्माणं कमलासनम्॥

१. पञ्चगव्यस्नानविधि

(१) गोमूत्र— अधोलिखित मन्त्रोच्चारणपूर्वक देवता को स्नान हेतु गोमूत्र समर्पित करे—

ॐ भूर्भुवः स्वः, तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात्।

(२) गोमय— अधोलिखित मन्त्रोच्चारण के साथ स्नान हेतु गोमय प्रदान करे—

ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्॥

(३) दुग्ध— अधोलिखित मन्त्र से देवता को स्नानहेतु दुग्ध समर्पित करे—

ॐ आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोमवृश्यं भवा वाजस्य सङ्गथे।

(४) दधि— नीचे लिखे मन्त्र का उच्चारण करते हुए देवता को स्नान हेतु दधि समर्पित करे—

ॐ दधि क्राब्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।
सुरभि नो मुखाकरत् प्रण आयूँषि तारिषत्॥

(५) घृत— अधोलिखित मन्त्र से देवता को स्नानार्थ घृत समर्पित करना चाहिये—

ॐ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि प्रियं देवानाम-नाधृष्टं देवयजनमसि।

कुशोदक— अधोलिखित मन्त्र से देवता को कुशोदक अर्पित करे—

ॐ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो-हस्ताभ्याम्॥

पञ्चामृतस्नानविधि

(१) पय— देवता को इस नीचे लिखे मन्त्र से स्नान हेतु *पय* उपहृत करे—

ॐ पयः पृथिव्यां पयओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयोधाः।
पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम्।

(२) दधि— नीचे लिखे मन्त्र से देवता को स्नान हेतु *दधि* अर्पित करे—

ॐ दधि क्राब्णोऽकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः।
सुरभि नो मुखा करत्प्रण आयूँषि तारिषत्॥

(३) घृत— अधोलिखित मन्त्रोच्चारण पूर्वक देवता को स्नानहेतु *घृत* अर्पित करे—

ॐ घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा। दिशः प्रदिश आदिशो विदिश उद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा॥

(४) मधु— अधोलिखित मन्त्र के साथ देवता को स्नानहेतु *मधु* अर्पित करे—

ॐ मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः।
मधु नक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता।
मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः॥

(५) शर्करा— नीचे लिखे मन्त्र से देवता को शर्करा अर्पित करे—

ॐ अपां रसमुद्वयसं सूर्ये सन्तं समाहितम्।
अपां रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयाम गृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्॥

३. पञ्चामृत

अधोलिखित मन्त्र से देवता को पञ्चामृत अर्पित करे—

ॐ पञ्च नद्यः सरस्वतीमपियन्ति सस्रोतसः।
सरस्वती तु पञ्चधा सोदेशेऽभवत् सरित्॥

शुद्धोदकस्नान— एतदनन्तर आराधक द्वारा देवता को शुद्ध जल से स्नान हेतु अधोलिखित मन्त्रों से शुद्धोदक अर्पित करे—

ॐ शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्त आश्विनाः श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्णा यामा अवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्जन्याः ॥

गङ्गा च यमुना चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदा सिन्धु कावेरी स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

गायत्रीन्यास विधि

अब आराधक अपने में तथा देवता में अधोलिखित मन्त्रोच्चार पूर्वक न्यास करे—

ॐ मूर्ध्नि तत् नमः।
ॐ मुखमण्डले सं नमः।
ॐ कण्ठदेशे विं नमः।
ॐ अङ्गसन्धिषु तुं नमः।
ॐ हृन्मध्ये वं नमः।
ॐ पार्श्वयोर्द्वयोः रें नमः।
ॐ दक्षिणकुक्षौ णिं नमः।
ॐ वामकुक्षौ यं नमः।
ॐ कट्यां नाभौ भं नमः।
ॐ पार्श्वयोर्द्वयोः र्गों नमः।
ॐ जङ्घयोः दें नमः।
ॐ पादपद्मयोः वं नमः।
ॐ अङ्गुष्ठयोः स्यं नमः।
ॐ हृदये धीं नमः।
ॐ ज्ञानुमूले मं नमः।
ॐ गुह्ये हिं नमः।
ॐ हृदये धिं नमः।
ॐ ओष्ठयोः यों नमः।
ॐ नासिकाग्रे नं नमः।
ॐ नेत्रे प्रं नमः।

ॐ भ्रुवोर्मध्ये चों नमः।
ॐ प्राणे दं नमः।
ॐ ललाटान्ते यं नमः।
ॐ केशे तं नमः।

वस्त्र— तदनन्तर आराधक को अधोलिखित मन्त्र से देवता को वस्त्र अर्पित करे—

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा॥
हिरण्यगर्भ पुरुष प्रधानाव्यक्तरूपवत्।
प्रसीद सम्मुखे भूत्वा वस्त्रं गृह्ण नमोऽस्तु ते॥

यज्ञोपवीत— एतदनन्तर, देवता को यज्ञोपवीत समर्पित करे—

विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम्।
तस्मै विशःसमनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथाऽसत्॥
नवभिस्तन्तुभिर्युक्तं त्रिगुणं देवतामयम्।
उपवीतं मया दत्तं गृहाणेदं चतुर्भुज॥

गन्ध— फिर आराधक देवता को श्रद्धापूर्वक गन्धद्रव्य अर्पित करे—

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो धृतमेने अजनन्नम्नमाने।
यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिद् द्यावापृथिवी अप्रथेताम्॥
श्रीखण्डं चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम्।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं चारु प्रगृह्यताम्॥

अक्षत— तब, आराधक देवता के लिये भक्तिपूर्वक अक्षत चढ़ाये—

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक्।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्त ऋषीन् पर एकमाहुः॥
अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ कुंकुमाक्ताः सुशोभिताः।
मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वर!॥

पुष्प— एतदनन्तर, भक्त देवता की पूजा हेतु सुगन्धयुक्त पुष्प अर्पित करे—

माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो।
मयानीतानि पुष्पाणि गृहाण परमेश्वर!

ब्रह्मा की अङ्गपूजाविधि

आराधक रोली-कुङ्कुम मिश्रित अक्षत एवं पुष्पों से ब्रह्मा के एक एक नाम-मन्त्र पढ़ते हुए उनके एक-एक अङ्ग का पूजन करे।

ॐ ब्रह्मणे नमः पादौ पूजयामि।
ॐ हिरण्यगर्भाय नमः ऊरू पूजयामि।
ॐ धात्रे नमः जानू पूजयामि।
ॐ परमेष्ठिने नमः जङ्घे पूजयामि।
ॐ वेधसे नमः गुह्यं पूजयामि।
ॐ पद्मोद्भवाय नमः वस्तिं पूजयामि।
ॐ हंसवाहनाय नमः कटिं पूजयामि।
ॐ अग्निरूपाय नमः उदरं पूजयामि।
ॐ पद्मनाभाय नमः हृदयं पूजयामि।
ॐ शतानन्दाय नमः वक्षं पूजयामि।
ॐ सावित्रीपतये नमः बाहू पूजयामि।
ॐ विधये नमः कण्ठं पूजयामि।
ॐ ऋग्यजुःसामाथर्ववेदेभ्यो नमः मुखान् पूजयामि।
ॐ कपालाय नमः कपोलं पूजयामि।
ॐ चतुर्वक्त्राय नमः शिरं पूजयामि।
ॐ ज्येष्ठाय नमः सर्वाङ्गानि पूजयामि।

लोकपाल-पूजाविधि

ॐ इन्द्राय नमः पूर्वे इन्द्रं पूजयामि।
ॐ अग्नये नमः आग्नेय्यां अग्निं पूजयामि।
ॐ यमाय नमः दक्षिणे यमं पूजयामि।
ॐ निर्ऋतये नमः नैर्ऋत्ये निर्ऋतिं पूजयामि।
ॐ वरुणाय नमः पश्चिमे वरुणं पूजयामि।

ॐ वायवे नमः वायव्ये वायुं पूजयामि।
ॐ सोमाय नमः उत्तरे सोमं पूजयामि।
ॐ ईशानाय नमः ऐशान्यां ईशानं पूजयामि।
ॐ ब्रह्मणे नमः ईशानपूर्वयोर्मध्ये ब्रह्माणं पूजयामि।
ॐ अनन्ताय नमः नैर्ऋत्यपश्चिमयोर्मध्ये अनन्तं पूजयामि।
ॐ ऋग्वेदं पूर्वे पूजयामि।
ॐ वेदाङ्गानि आग्नेय्यां पूजयामि।
ॐ यजुर्वेदं दक्षिणे पूजयामि।
ॐ धर्मशास्त्राणि नैर्ऋत्ये पूजयामि।
ॐ सामवेदं प्राच्यां पूजयामि।
ॐ पुराणानि वायव्ये पूजयामि।
ॐ अथर्ववेदं उत्तरे पूजयामि।
ॐ न्यायविस्तरान् ऐशान्यां पूजयामि।
ॐ धर्माय नमः प्राच्यां धर्मं पूजयामि।
ॐ अधर्माय नमः आग्नेय्याम् अधर्मं पूजयामि।
ॐ ज्ञानाय नमः दक्षिणे ज्ञानं पूजयामि।
ॐ अज्ञानाय नमः नैर्ऋत्ये अज्ञानं पूजयामि।
ॐ वैराग्याय नमः प्रतीच्यां वैराग्यं पूजयामि।
ॐ अवैराग्याय नमः वायव्ये अवैराग्यं पूजयामि।
ॐ ऐश्वर्याय नमः उत्तरे ऐश्वर्यं पूजयामि।
ॐ अनैश्वर्याय नमः ईशाने अनैश्वर्यं पूजयामि।

हृदयादिन्यास— तत्पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों से निर्दिष्ट अङ्गों का स्पर्श.करता हुआ हृदयादि न्यास करे।

ॐ आपोहिष्ठा मयोभुवस्तान ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे–हृदयाय नमः॥

ॐ ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत। ततो रात्रिरजायत। ततः समुद्रोऽर्णवः। समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः शिखायै वषट्।

ॐ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यं स्वाहा-नेत्राभ्यां वौषट्।

ॐ मर्माणि ते वर्मणा छादयामि, सोमस्त्वा राजाऽमृतेनानुवस्ताम्। उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वाऽनु देवामदन्तु-कवचाय हूँ॥

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा -अस्त्राय फट्॥

धूप— एतदनन्तर आराधक देवता को गन्धद्रव्ययुक्त धूप अर्पित करे—

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामनि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधा एक एव तं सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या॥

विश्वरूपनिराधार निरालम्ब निरामय।
आगच्छ देव देवेश धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

दीप— पुनः देवता के सम्मुख भक्तिपूर्वक दीप जलावे—

त आऽयजन्त द्रविणं समस्मा ऋषयः सूर्वे जरितारो न भूना।
असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि॥

कृष्णाजिनाम्बरधरं पद्महस्तं चतुर्भजम्।
वेदाधारं निरालम्बं दीपं वै दर्शयाम्यहम्॥

नैवेद्य— पुनः आराधक नीचे लिखे मन्त्र से ब्रह्मदेव के सम्मुख *नैवेद्य* (भोग) प्रस्तुत करे—

परो दिवा पर एना पृथिव्या परोदेवेभिरसुरैर्य दस्ति।
क्वँस्विद् गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त पूर्वे॥

त्वया सृष्टं जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम्।
नैवेद्यं गृह्यतां देव ब्रह्मरूप नमोऽस्तुते॥

फल— अब नीचे लिखा मन्त्र बोलते हुए देवता को मधुर *फल* अर्पित करे—

पद्मयोने चतुमूर्त्ते वेदगर्भ पितामह।
फलं गृहाण देवत्वं यज्ञसंसिद्धिहेतवे॥

दक्षिणा— अन्त में आराधक भक्तिपूर्वक देवता के प्रसाद की प्राप्ति हेतु देवता को नीचे लिखे मन्त्र से पुष्कल *दक्षिणा* अर्पित करे—

दक्षिणा प्रेमसहिता यथाशक्ति समर्थिता।
अनन्तफलदामेनां गृहाण परमेश्वर॥

प्रदक्षिणा— इसके बाद, आराधक अधोलिखित मन्त्र से देवता की *प्रदक्षिणा* करे—

तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः॥
नं तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति॥

आर्ति (आरती)— तदनन्तर, आराधक अधोलिखित मन्त्र से भगवान् ब्रह्मा की *आरती* करे—

अनेकव्रतकर्ता त्वं सर्वेषां च पितामह।
आरार्तिकमहं कुर्वे पश्य मे वरदो भव॥

पुष्पाञ्जलि— तब आराधक नीचे लिखे मन्त्रों से ब्रह्मा को *पुष्पाञ्जलि* अर्पित करे—

विश्वकर्मा ह्यजनिष्ट देव आदिद्गन्धर्वो अभवद् द्वितीयः।
तृतीयः पिता जनितोषधीनामपां गर्भं व्यदधात् पुरुत्रा॥
नमो विश्वसृजे तुभ्यं सत्याय परमेष्ठिने।
देवाय देवपतये यज्ञानां पतये नमः॥

नमस्कार— एतदनन्तर, आराधक अधोलिखित मन्त्र से देवता को *नमस्कार* करे—

अक्षमालां स्रुवं दक्षे वामे स्रुचं कमण्डलुम्।
लम्बकूर्चं च जटिलं ब्रह्माणं वै नमोऽस्तु ते॥

प्रार्थना— अन्त में आराधक देवता से अधोलिखित मन्त्रोच्चारणपूर्वक विनम्र प्रार्थना करे—

कृष्णाजिनाम्बरधर पद्मासन चतुर्मुख।
जटाधर जगत्त्रात प्रसीद कमलोद्भव॥

पद्मयोनि चतुर्मूर्तिः वेदव्यासपितामहः।
यज्ञाध्यक्षश्चतुर्वक्त्रस्तस्मै नित्यं नमोनमः॥
विद्याधराय देवाय ज्ञानगम्याय सूरये।
कमण्डल्वक्षमालास्त्रुक्स्त्रुवहस्ताय ते नमः॥

इस तरह आराधक को ब्रह्मा जी की नित्य पूजा सम्पन्न कर, तदनन्तर स्वाभीष्टसिद्ध्यर्थ देवता के मन्त्र, स्तोत्र आदि का जप-पाठ आरम्भ करना चाहिये।



मन्त्र-जपविधिः

जपहेतु माला— एतदनन्तर, आराधक को भगवान् देवाधिदेव ब्रह्माजी के अभीष्ट मन्त्र का न्यासादिपूर्वक रुद्राक्ष या लालचन्दन की माला पर स्वकार्यसिद्ध्यर्थ इच्छानुसार जप करना चाहिये।

माला का पूजन— सर्वप्रथम, माला का अधोलिखित मन्त्रों से पूजन कर जप प्रारम्भ करना चाहिये—

"ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणी!
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव॥"
"ह्रीं सिद्धये नमः"

ब्रह्ममन्त्राः

मन्त्रोद्धारः

तारं पाशं ब्रह्मणे च लोकाधिपतये वदेत्।
रक्तवर्णायोर्ध्व लोकपालाय वदेत् ततः॥
पद्महस्ताय च पदं ङेऽन्तं स्याद् हंसवाहनः।
नमोऽन्तो बाणरामार्णो मन्त्रोऽयं परिकीर्तितः॥
तारपाशादिकैः षड्भिः पदैरङ्गैः हृदन्तकैः।
वर्णलक्षजपादेव निग्रहानुग्रहक्षमः॥

अङ्गादिन्यासः

ॐ आं ब्रह्मणे अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।
ॐ आं लोकाधिपतये तर्जनीभ्यां नमः।
ॐ आं रक्तवर्णाय मध्यमाभ्यां नमः।
ॐ आं ऊर्ध्वलोकपालाय अनामिकाभ्यां नमः।
ॐ आं पद्महस्ताय कनिष्ठिकाभ्यां नमः।
ॐ आं हंसवाहनाय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादिन्यासः

ॐ आं ब्रह्मणे हृदयाय नमः।
ॐ आं लोकाधिपतये शिरसे स्वाहा।
ॐ आं रक्तवर्णाय शिखायै वषट्।
ॐ आं ऊर्ध्वलोकपालाय कवचाय हुम्।
ॐ आं पद्महस्ताय नेत्रेभ्यो वौषट्।
ॐ आं हंसवाहनाय अस्त्राय फट्।

मन्त्रः

ॐ आं ब्रह्मणे लोकाधिपतये रक्तवर्णाय ऊर्ध्वलोकपालाय
पद्महस्ताय हंसवाहनाय नमः। *(मेरुतन्त्र)*

[३५ लाख जप से सिद्धि होती है।]

मन्त्रोद्धारः

प्रणवत्रयमुद्धृत्य दीर्घप्रणवयुग्मकम्।
तदन्ते प्रणवत्रीणि ब्रह्म-ब्रह्म त्रयत्रयम्॥
सर्वसिद्धिपदस्यान्ते पालयेति च मांपदम्।
सत्वंगुणो रक्ष-रक्ष मायास्वाहां पदं जपेत्॥
ॐ ॐ ॐ औं औं ॐ ॐ ॐ ब्रह्म-ब्रह्म-ब्रह्म
सर्वसिद्धि पालय मां सत्वगुणो रक्ष रक्ष ह्रीं स्वाहा।

(रुद्रयामल)

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। *(अग्निपुराण)*
ॐ तत्सद् ब्रह्मणे नमः। (अग्निपुराण)

अथ ब्रह्मगायत्रीमन्त्राः

ॐ चतुर्मुखाय विद्महे कमण्डलुधराय धीमहि
तन्नो ब्रह्मा प्रचोदयात्।
ॐ तच्चतुर्मुखाय विद्महे पद्मासनाय धीमहि
तन्नो ब्रह्मा प्रचोदयात्।
ॐ वेदात्मने च विद्महे हिरण्यगर्भाय धीमहि
तन्नो ब्रह्मा प्रचोदयात्।

ॐ वेदान्तनाथाय विद्महे हिरण्यगर्भाय धीमहि
तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात्।
ॐ पद्मोद्भवाय विद्महे वेदवक्त्राय धीमहि
तन्नः स्त्रष्टा प्रचोदयात्। (लिङ्गपुराण)
ॐ पद्मासनाय विद्महे हंसारूढाय धीमहि
तन्नो ब्रह्मा प्रचोदयात्।
ॐ महातत्त्वाय विद्महे हिरण्यगर्भाय धीमहि
तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात्।



ब्रह्मस्तोत्रसंग्रहः

ऋग्वेदतः—

पुरुषसूक्तम् (ऋ० १०/९०)

सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥ १॥

नारायण ऋषि प्रस्तुत सूक्त में परमेश्वर के सूक्ष्म स्वरूप का वर्णन करते हैं—

जिसके हजारों मस्तक हैं, जिसके हजारों नेत्र हैं एवं जिसके हजारो पैर हैं ऐसा एक पुरुष (ईश्वर) है। वह भूमि को चारों तरफ से आवृत कर (घेर) रखा है। तथा वह दश अङ्गुल रूप से इस अल्प (छोटी सी) सृष्टि को व्याप्त कर इससे बाहर भी है॥ १॥

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥ २॥

जो कुछ भी पदार्थसमूह भूतकाल में हुआ और जो वर्तमान काल में दिखायी दे रहा है, तथा जो आगे आने वाले काल में भी होगा वह सब कुछ यह पुरुष ही है। यह पुरुष अमरत्व (मोक्ष) का स्वामी है। जो (प्राणिसमूह) अन्न से बढ़ता है उसका भी स्वामी यह पुरुष ही है॥ २॥

एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥ ३॥

इस पुरुष की इतनी विशाल महिमा है। इस से भी बड़ा ज्येष्ट पुरुष (परमेश्वर) एक अन्य भी है। इस विश्व में जो कुछ भी उत्पन्न दिखायी देता है वह सब इस पुरुष के एक चरण (चतुर्थ अंश) के समान है। इसके अवशिष्ट तीन चरण दिव्य लोक में अमृत (अविनाशी) रूप से स्थित हैं॥ ३॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।
ततो विश्वं व्यक्रामत् साशनानशने अभि॥ ४॥

वह त्रिपाद (अविनाशी) पुरुष तो ऊपर द्युलोक में रहता है। (परन्तु) उस (एक पाद) पुरुष का एक भाग इस विश्व के रूप में पुनः पुनः उत्पन्न होता रहता है। उत्पन्न होने के पश्चात् उसने अन्न खाने वाले और अन्न न खाने वाले विश्व को सब तरफ विविध रूपों से व्याप्त कर लिया॥ ४॥

तस्माद् विराळजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः॥ ५॥

उस परमात्मा (ईश्वर) से विराट् पुरुष (सृष्टिकारक=ब्रह्मा) उत्पन्न हुआ। विराट् से ऊपर तक एक अधिष्ठाता पुरुष हुआ। वह उत्पन्न होकर देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि रूपों में विभक्त होने लगा। तब सर्वप्रथम भूमि आदि में वृत्तता आयी। तदनन्तर उस पर नानाविध प्राणियों के शरीर उत्पन्न हुए॥ ५॥

यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥ ६॥

जब देवताओं ने (अन्य पदार्थों के अभाव में) उस विराट् पुरुष रूपी हवि के द्वारा यज्ञ करना प्रारम्भ किया, तब वसन्त ऋतु ने उस यज्ञ में घी का कार्य किया, ग्रीष्म ऋतु ने ईंधन एवं शरद् ऋतु ने हवि का कार्य किया॥ ६॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषँ जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये॥ ७॥

उस सर्वप्रथम विहित यज्ञ के अवसर पर यजनीय विराट् पुरुष को (यज्ञीय पशु मानकर) यज्ञ में प्रोक्षण (कुशसमूह से छींटे देकर अभिमन्त्रित) करते हुए देव, साध्य और ऋषियों ने उस विराट् पुरुष से ही यज्ञ सम्पन्न किया था॥ ७॥

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्।
पशून् ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये॥ ८॥

उस सर्वहुत यज्ञ से दही के साथ मिला हुआ घी प्राप्त हुआ। वायु में उड़ने वाले और जङ्गलों में रहने वाले पशुओं को ग्राम में रहने वाला पशु बनाया॥ ८॥

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत॥ ९॥

उस सर्वहुत यज्ञ से ऋग्वेद के मन्त्र तथा सामगान बने। छन्द अर्थात् अथर्ववेद के मन्त्र (गायत्री आदि) भी उसी से बने। तथा उसी से यजुर्वेद के मन्त्र भी उत्पन्न हुए॥ ९॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः॥ १०॥

उस सर्वहुत यज्ञ से ही ऊपर-नीचे दोनों तरफ दाँतों वाले घोड़े बने। उसी से गौएँ उत्पन्न हुईं। और उसी से भेड़ एवं बकरियाँ भी पैदा हुईं॥ १०॥

यत् पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते॥ ११॥

जिस (विराट्) पुरुष का यहाँ वर्णन किया गया है उसकी कई प्रकार से कल्पना की गयी है। (जैसे—) इसका मुख क्या है? दोनों बाहू कौन हैं? इस की जङ्घाएँ कौन सी हैं? इसके पैर कौन से हैं? इन्हें क्या कहा जाता है?॥ ११॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥ १२॥

(इन प्रश्नों के उत्तर में यह कहा जाता है—) उस पुरुष का मुख 'ब्राह्मण' (=ज्ञानी) हुआ है। उस पुरुष का बाहु क्षत्रिय (=शूर वीर पुरुष) हुए हैं। उसकी जङ्घाएँ उन्हें मानना चाहिये जो वैश्य हैं। और पैरों से शूद्र हुए॥ १२॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत॥ १३॥

उस (परमात्मा) के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ है। उसके नेत्रों से सूर्य उत्पन्न हुए हैं। मुख से इन्द्र और अग्नि एवं प्राण से वायु की उत्पत्ति हुई है॥ १३॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकाँ अकल्पयन्॥ १४॥

उसकी नाभि से अन्तरिक्ष की उत्पत्ति मानी गयी है। उसके शिर से द्युलोक का निर्माण हुआ। पैरों से भूमि और कानों से दिशाओं की उत्पत्ति मानी गयी है। इस तरह अन्य लोकों की कल्पना भी इसी पुरुष से की गयी है॥ १४॥

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम्॥ १५॥

उस यज्ञ (पुरुष) की सात परिधियाँ (यज्ञमण्डल=वृत्त) थीं। त्रिगुण सप्त (७X३=२१) इक्कीस समिधाएँ (पलाश आदि पवित्र वृक्षों की लकड़ियाँ, जो यज्ञकुण्ड में चारों तरफ रखी रहती हैं) थीं। देवता लोग जिस यज्ञ का विस्तार (प्रचार) कर रहे थे उसमें इस पुरुषरूप पशु को बाँधते थे॥ १५॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमान सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥ १६॥

देवताओं ने इस यज्ञपुरुष के साधन से जो यज्ञ कार्य प्रारम्भ किया था वे (इस सृष्टि के प्रारम्भ के) श्रेष्ठ (मुख्य) धर्म (सृष्टि को धारण करने वाले) थे। ऐसे यज्ञधर्म का आचरण करने वाले महात्मा धार्मिक जन भी निश्चय ही उसी सुखपूर्ण स्थान (स्वर्ग) में जाकर रहने लगे जहाँ पूर्व समय के साध्य (साधन सम्पन्न) यज्ञ करने वाले देवता वास करते थे॥ १६॥

॥ पुरुषसूक्त समाप्त॥



ऋग्वेदतः—

हिरण्यगर्भसूक्तम् (ऋ० १०/१२१)

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ १॥

इस सृष्टि के निर्माण से पूर्व हिरण्यगर्भ (परमात्मा) विद्यमान था। वही उत्पन्न जगत् का एकमात्र (अद्वितीय) स्वामी है। वही इस पृथ्वी एवं अन्तरिक्ष को धारण करता है। इस सुखदायी परमेश्वर ('क' नामक प्रजापति) की हम हवि के द्वारा उपासना (=पूजा) करते हैं॥ १॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ २॥

जो आत्मज्ञान एवं बल (शक्ति) का देने वाला है, जिसकी आज्ञा का पालन सभी देवता लोग करते हैं, अर्थात् जिसके उत्कृष्ट शासन को सब लोग मानते हैं, जिसकी शरणरूपी छाया अमृत के समान है तथा जिसकी शरण में न जाना अपनी मृत्यु को अपने समीप बुलाना है, उस सुखस्वरूप परमेश्वर की हम उत्तम रूप से उपासना करते हैं॥ २॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ३॥

प्रजापति के सर्वेश्वरत्व का वर्णन— जो इस श्वास उच्छ्वास लेने वाले तथा आँख झपकाने वाले सम्पूर्ण चर तथा अचर जगत् का, अपने महान् सामर्थ्य के कारण या अपनी महिमा के प्रभाव से एकमात्र राजा है; जो इस समस्त सृष्टि के पशु आदि चार पैरों वाले या मनुष्य आदि दो पैरों वाले प्राणियों का स्वामी है, उस सुखदाता अद्वितीय परमेश्वर की हम सब प्रकार से उपासना करते हैं॥ ३॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ४॥

ये हिमाच्छादित पर्वत जिसकी महिमा से उत्पन्न हुए हैं, जिसके महान् प्रभाव को द्योतित करते हैं; जिसके महान् प्रभाव को ये जलयुक्त नदियाँ, यह गतिशील पृथ्वी तथा समुद्र एवं आकाश प्रकट कर रहे हैं; जिसके महान् सामर्थ्य को ये सभी दिशाएँ उसकी भुजाओं की तरह सब तरफ फैल कर बता रही हैं, ऐसे उस एकमात्र परमेश्वर की हम सर्वथा उपासना करते हैं ॥ ४ ॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळ्हा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ५ ॥

प्रजापति के विश्वनिर्माण सम्बन्धी कार्यों का वर्णन—

जिससे यह आकाश (अन्तरिक्ष) विशालता की सामर्थ्य सम्पन्न हुआ तथा पृथ्वी स्थिर रूप से स्थापित है, जिसने अपनी महिमा से स्वर्गलोक को स्थिर किया और जिसने सूर्य को अन्तरिक्ष में स्थापित किया, जिसने आकाश में जल की सृष्टि की, उस एकमेव अद्वितीय सुखस्वरूप परमात्मा के हम सब तरह से उपासक हैं ॥ ५ ॥

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।
यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ६ ॥

ये आकाश एवं पृथ्वी शब्दायमान होकर (स्तुति करते हुए) प्राणियों की रक्षा के लिये, स्थिर एवं दृढ़ रूप से अत्यधिक प्रकाशित होते हुए जिसको मन इन्द्रिय से प्रत्यक्ष देखते हैं, उस एकमात्र अद्वितीय सुखस्वरूप परमात्मा की हम सब तरह से उपासना करते हैं ॥ ६ ॥

आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ७ ॥

जो अग्नि आदि इस समस्त विशाल जगत् को उत्पन्न करने वाला है, तथा जो महान् गर्भ (हिरण्मय) अण्ड को धारण करने वाला जल ही जिसके सामर्थ्य से सर्व जगत् को व्याप्त करता है और इसी कारण जिससे देवता आदि सब प्राणियों के प्राणभूत एक अद्वितीय प्रजापति का निर्माण हुआ है उस सुखस्वरूप परमेश्वर की हम सब तरह से उपासना करते हैं ॥ ७ ॥

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद् दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम्।
यो देवेष्वधिदेव एक आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ८॥

जिसके कारण यज्ञ उत्पन्न करने वाला, प्रजापति को धारण करने वाला प्रलय काल का जल उत्पन्न हुआ। जिसने अपनी महिमा से उस जल का चारों ओर निरीक्षण किया और जो देवों में श्रेष्ठ तथा उनका भी स्वामी है, एक है, अद्वितीय देवाधिदेव है उस परम सुख रूप देवता की हम उपासना करते हैं॥ ८॥

मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जनान।
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ९॥

वह हमें पीड़ित न करे जो इस पृथ्वी (सृष्टि) का रचयिता है, जो सत्य धर्म एवं जगत् का धारक है, जो स्वर्ग का निर्माण कारक है। तथा जो आह्लादकारक विपुल महान् जल का भी उत्पादक है। अतः उस सुखरूप देवता की हम उत्तम रीति से उपासना (पूजा) करते हैं॥ ९॥

उस प्रजापति से स्वकीय मनोरथों की पूर्ति की इच्छा—

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वाजातानि परि ता बभूव।
यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥ १०॥

हे प्रजापति! आपके अतिरिक्त अन्य कौन इन वर्तमान, भूत एवं अनागत के समस्त उत्पन्न पदार्थों को जगत् में व्याप्त कर सकता है! अर्थात् आप ही सर्वत्र व्यापक हैं। जिन वस्तुओं की इच्छा (कामना) करके हम आप की उपासना करते हैं वे हमें प्राप्त हों। हम समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी हों॥ १०॥

॥ हिरण्यगर्भसूक्त समाप्त ॥



विश्वकर्म(ब्रह्म)सूक्तम्

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ आ विवेश॥ १॥

जो हमारा पालक परमेश्वर इन समस्त लोकों को प्रलयकाल में संहार करके स्वयं ज्ञानवान् और देवों को आह्वान करने वाला होकर विराजता है। वह परमेश्वर अपने आशीर्वाद के सामर्थ्य से अपनी कामना पूर्ण करने की इच्छा करता हुआ, सबको अपने अधीन करके अपने अधीन हुए समस्त भूतों में व्यापक होकर रहता है॥ १॥

किंस्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथाऽऽसीत्।
यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः॥ २॥

कौन सा आश्रय था? संसार को बनाने के लिए प्रारम्भिक मूल द्रव्य कौन सा था? वह किस दिशा में था? जिससे वह समस्त संसार का कर्ता भूमि का उत्पन्न करता हुआ, अपने महान सामर्थ्य से सम्पूर्ण जगत् को साक्षात् करने वाला होकर द्युलोक को विशेष रूप से व्याप्त करता है॥ २॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमीं जनयन् देव एकः॥ ३॥

वह परमेश्वर सर्वत्र आँखवाला सब ओर मुखवाला सब ओर भुजावाला, और सब ओर चरणवाला है, वह अपनी भुजाओं से अर्थात् बाहुस्थानीय बलवीर्य से एक अद्वितीय देव द्युलोक और पृथ्वी लोक को प्रकट करता हुआ पतनशील अथवा प्रगतिशील प्रकृति के परमाणुओं से संसार को सुव्यस्थित करता और रचता है॥ ३॥

परमेश्वर सर्व शक्तिमान् है और वह सर्वत्र विराजता है और अपनी शक्ति से सर्वत्र उचित कार्य करता रहता है। उसके सर्वत्र सब अवयवों के कार्यों के समान कार्य हो रहे हैं, अतः इस मंत्र में कहा है कि उनके हस्तपादादि अवयव सर्वत्र हैं और उनसे वह सब प्रकार के कार्य करता रहता है ॥ ३ ॥

किंस्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥ ४ ॥

वह कौन सा मूल कारण सबके भजन करने योग्य परम तत्त्व है? वह वृक्ष कौन सा है? जिसमें से स्वर्ग और भूमि को परमेश्वर निकाला है। हे विवेकी पुरुषो! तुम लोग भी उस मूल कारण के सम्बन्ध में पूछो अर्थात् प्रश्न, तर्कवितर्क जिज्ञासा करो। जो समस्त भुवनों को धारण करते हुए अध्यक्ष रूप से शासन कर रहा है ॥ ४ ॥

या ते धामानि परमाणि याऽवमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा ।
शिक्षा सखिभ्यो हविषिं स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥ ५ ॥

हे संसार के कर्ता! हे बहुत धारणशक्ति से युक्त परमेश्वर! जो तेरे उत्कृष्ट, सूक्ष्म और बीच के तथा ये सभी स्थान और कर्म हैं उन सबको हम मित्ररूप जीवों को तू प्रदर्शित करता है। तुम ही हम जीवों के शरीर की वृद्धि करते हुए, योग्य अन्नादि से स्वयं यजन करो॥

इस विश्व में जो स्थान हैं, उनमें परमेश्वर भरकर रहा है। यह विश्वरूप महायज्ञ वही चला रहा है। उसका यह पवित्र कार्य सबके देखने योग्य है ॥ ५ ॥

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् ।
मुह्यन्त्वन्ये अभितः सपत्ना इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥ ६ ॥

हे विश्व के कर्ता परमात्मन्! मेरे दिये हुए हविरूप अन्न से प्रसन्न हुये तुम मेरे इस यज्ञ में भूमि के आश्रितजीवों के हित के लिये स्वयं यजन करो, और तुम्हारी कृपा से सब ओर से दूसरे शत्रु मोह

को प्राप्त हों, यहाँ इस यज्ञ में इन्द्र हमारे लिये आत्मज्ञान का उपदेशक महा विद्वान् रूप हो॥

हमारे शत्रु मोहित होकर दूर भाग जांय, और विद्वानों की सहायता हमें प्राप्त होती रहे॥ ६॥

वाचस्पतिं विश्वकर्मारमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा॥ ७॥

आज युद्ध में, वेदवाणी के रक्षक, मन के समान वेगवान, सब कर्मों में कुशल परमात्मा को अपनी रक्षा के लिये हम बुलाते हैं, वह संसार का कल्याण करने वाला और उत्तम कर्मों का कर्त्ता हमारे समस्त आह्वानों को हमारा रक्षण करने के लिये प्रेम से श्रवण करता है॥ ७॥

विश्वकर्मन् हविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम्।
तस्मै विशः समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथाऽसत्॥ ८॥

हे सम्पूर्ण शुभ कर्मों के करने वाले परमेश्वर! बढ़ानेवाले हवन द्वारा तुमने इन्द्र को जगत् का रक्षक और अवध्य किया है, उस इन्द्र के सामने सब प्रजाएँ भली प्रकार झुकती हैं, यह इन्द्र उस धीर जैसा अनेक कार्यों में बुलाने योग्य हुआ है॥ ८॥

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमे ने अजनन्नम्नमाने।
यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिद् द्यावापृथिवी अप्रथेताम्॥ ९॥

जिस समय पूर्व महर्षियों ने द्यावा भूमि के अन्तर्देशों को दृढ़ किया उसके अनन्तर ही द्यावापृथ्वी विस्तार युक्त हुईं, तब सम्पूर्ण चक्षु आदि इन्द्रियों का पालक परमात्मा अपने मन के बल से धीरता युक्त होकर ही इन नममान द्यावा पृथ्वी के अन्दर जल को उत्पन्न करता है॥ ९॥

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक्।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्त ऋषीन् पर एकमाहुः॥ १०॥

हे मनुष्यो! जो परमात्मा समस्त संसार का बनाने वाला, जो अनेक प्रकार के मननीय ज्ञान से युक्त, विविध प्रकार के पदार्थों में

व्याप्त, सबका धारण-पोषण कर्ता, सृष्टि का रचने वाला, सर्वद्रष्टा और सबसे उत्तम है, जिसको एक अद्वितीय कहते हैं और जिसमें पाँच इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इन सातों को प्राप्त होकर इच्छा से जीव अनेक प्रकार के आनन्द को प्राप्त होते हैं और जो उन जीवों के सुख देने वाले कामों को पूर्ण करता है, उस परमात्मा की तुम सब उपासना करो॥

सप्त ऋषयः— सात ऋषि प्रत्येक शरीर में— मानव शरीर में रहते हैं। दो आंख, दो कान, दो नासिका छिद्र और एक मुख ये सात प्रत्येक शरीर में होते ही हैं॥ १०॥

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधा एक एव त सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या॥ ११॥

जो परमेश्वर हमारा पालक और उत्पादक है, जो विशेष रीति से धारण करने वाला है, जो सम्पूर्ण स्थानों व लोकों को जानता है, जो एक होकर भी अनेक देवताओं के अनेक नाम धारण करता है, दूसरे भुवन के लोक प्रशंसा करने योग्य उसको प्राप्त होते हैं॥ ११॥

त आऽयजन्त द्रविणं समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना।
असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि॥ १२॥

वे पूर्व के ऋषिगण स्तुति करने वालों के समान इस ईश्वर को बहुत ऐश्वर्य यज्ञ में समर्पण करते रहे हैं। जो प्रत्यक्ष और परोक्ष रजोगुण में रहकर इन भूतों को विशेष रूप से उत्पन्न करते हैं॥ १२॥

परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति।
कस्विद् गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त पूर्वे॥ १३॥

जो (तत्व) है वह द्युलोक से भी दूर हैं, इस पृथ्वी से परे हैं और देवताओं से तथा असुरों से भी दूर हैं, जलों ने पहले किस गर्भ को धारण किया, वह गर्भ कैसा आश्चर्य रूप था? जहाँ पूर्वकालीन देवगण उस तत्त्व का सम्यग् दर्शन करते हैं।

जो मुख्य तत्त्व है, वह द्युलोक से परे, इस पृथिवी के परे, देव तथा असुरों के परे है॥ १३॥

तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥१४॥

उस सबसे प्रथम विद्यमान ने जल के गर्भ को धारण किया है, जहाँ समस्त दिव्य शक्तियाँ, मिलकर रही हैं। वस्तुतः इस अजन्मा ईश्वर के रूप के नाभि केन्द्र में एक परम तत्त्व सर्वोपरि विद्यमान है, जिसमें समस्त भुवन आश्रय पाकर स्थिर है।

जलों ने उसको सबसे प्रथम गर्भ में धारण किया, जिससे सब प्रकार की सृष्टि पश्चात् उत्पन्न हुई है।

जिसमें सब दिव्य शक्तियाँ मिलकर रहीं हैं और मिलकर प्रगति कर रही हैं।

अजन्मा परमात्मा की नाभि में अर्थात् उसके मध्य में एक तत्त्व रहता है, जिससे समस्त विश्व बनता है।

जिसमें समस्त भुवन रहते हैं, वह एक तत्त्व है॥ १४॥

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बूभव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति॥ १५॥

हे मनुष्यो! जो इन समस्त लोकों को पैदा करता है, तुम लोग उसको नहीं जानते, वह और ही तत्त्व है, जो सबसे भिन्न होकर भी तुम लोगों के मध्य में व्यापक है, कुहरे से घिरे हुओं के समान, केवल विवाद या मौखिक वार्ता ही करने वाले और एकमात्र प्राणपोषण की चिन्ता में लगे, ऐसे लोग ज्ञान के तत्त्व का विचार करने वाले बनकर विचरण करते हैं। अर्थात् लोग ईश्वर के सम्बन्ध में वाद विवाद बहुत करते हैं परन्तु साक्षात्कार नहीं करते।

जिसने ये विश्व के नाना पदार्थ उत्पन्न किये हैं उसको तुम जानते नहीं।

वह दूसरा है, अर्थात् वह तुमसे भिन्न है। वह तुम्हारे अन्दर रहता है।

अज्ञान के कुहरे से घिरे हुए, केवल बातें करने वाले, केवल शरीर के प्राण के रक्षण करने वाले तत्त्वज्ञान का बकवास करते रहते हैं॥ १५॥

बिश्वकर्मा ह्यजनिष्ट देव आदिद्गन्धर्वो अभवद् द्वितीयः ।
तृतीयः पिता जनितौषधीनामपां गर्भं व्यदधात् पुरुत्रा ॥ १६ ॥

सबसे प्रथम विश्व का कर्ता परमात्मा प्रकट हुआ था, पश्चात् उसके गौ, पृथ्वी आदि का धारक सूर्य प्रकट हुआ। तीसरा ओषधियों का पालक और उत्पादक मेघ है, वह जलों के गर्भ को बहुत प्रकार से अपने में धारण करता है ॥ १६ ॥

विश्वकर्मसूक्त सम्पूर्ण ॥



यजुर्वेदतः—

प्रजापतिमन्त्राः

ब्राह्मणमद्य विदेयं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयं सुधातुदक्षिणम्।
अस्मद्राता देवत्रा गच्छत प्रदातारमा विशत॥ १ ॥

मैं आज विख्यात विद्वान् यशस्वी पिता के सुपुत्र, जनमान्य पितामह वाले, मन्त्रों को जानने वाले, ज्ञान से विख्यात, जिनके निकट सम्पूर्ण सुवर्णदक्षिणा सञ्चय होता है, ऐसे सर्वगुण सम्पन्न ब्राह्मण को प्राप्त करूँ। और हमारे द्वारा दी गई सम्पूर्ण दक्षिणा देवताओं से अधिष्ठित ऋत्विक् गण के समीप जाये और देवताओं को तृप्त करे उत्कृष्ट दानशील यजमान में इस यज्ञ का फल देने के लिये प्रवेश करे॥ १ ॥

मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्यमग्निं स्वे योनावभारुखा।
तां विश्वैर्देवैर्ऋतुभिः संविदानः प्रजापतिर्विश्वकर्मा वि मुञ्चतु॥ २ ॥

जिस प्रकार माता पुत्र को अपने गर्भस्थान में धारण करती है, उसी प्रकार भूमि पर आने वाली उखा प्राणियों के हितकारी अग्नि को अपने मध्य में धारण करती है। सम्पूर्ण देवताओं और ऋतुओं द्वारा एकता को प्राप्त उखा ने कहा कि सृष्टि के निर्माता प्रजापति उखा को विमुक्त करो॥ २ ॥

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः॥ ३ ॥

पूर्व दिशा से सबसे प्रथम प्रकट होता हुआ सबसे महान्, अपनी सीमा से सुन्दर रुचिवाले इन लोकों को अपने प्रकाश से प्रकट करता हुआ, वह प्रसिद्ध आदित्य कान्तिमान्, समान रीति से रहने वाला और इस जगत् का निवासस्थान अन्तरिक्ष में दिशाओं में विद्यमान् मूर्त और अमूर्त के उत्पत्ति स्थान को प्रकाशित करता है ॥ ३ ॥

ब्रह्मं क्षत्रं पवते तेज इन्द्रियं सुरया सोमः सुत आसुतो मदाय।
शुक्रेण देव देवताः पिपृग्धि रसेनान्नं यजमानाय धेहि॥ ४॥

हे दिव्यगुणवाले सोम! अपने वीर्यवर्धक तेज से देवताओं को तुम प्रसन्न करो, रस से युक्त अन्न को यजमान के लिये प्रदान करो, वह सोम ओषधिका रस निकालने से ब्राह्मण वर्ग और क्षत्रिय वर्ग को पवित्र करता है, तथा तेजस्विता और इन्द्रिय सामर्थ्य को प्रकट करता है एवं सुरा से मिलाया यह सोमरस तीव्र होने से मद करने वाला होता है॥ ४॥

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामेनिकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्॥ ५॥

हे महान् शक्तिवाले परमेश्वर! हमारे राष्ट्र में ब्रह्मवर्चस्वी ब्राह्मण उत्पन्न हों; शूर, बाण वेधन करने में कुशल, शत्रुओं को भली प्रकार परास्त करने वाले महारथी क्षत्रिय उत्पन्न हों; हमारी गायें दूध देनेवाली हों; बैल वहनशील हों, घोड़ा शीघ्र गमन करने वाला हो, स्त्री सर्वगुणसम्पन्न नगर का नेतृत्व करने वाली हो, रथ में बैठनेवाला महावीर जयशील पराक्रम करने वाला तरुण सभा के योग्य उत्तम वक्ता पुत्र उत्पन्न हो; हमारे राष्ट्र में प्रत्येक योग्य अवसर पर जब जब हमें आवश्यकता हो तब तब मेघ बरसे; हमारी ओषधियां फलवती होकर परिपक्वता को प्राप्त हों, और हमारा योग क्षेम उत्तम रीति से होता रहे॥ ५॥

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमं सरः।
इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते॥ ६॥

सूर्य के समान तेजस्वी प्रकाश ब्रह्म है, समुद्र के समान सरोवर द्युलोक है; पृथ्वी से भी अधिक पुराना परमैश्वर्यवान् इन्द्र है; और गौ की तो तुलना करने योग्य दूसरी कोई वस्तु नहीं है॥ ६॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥ ७॥

हे सब प्रजाओं के स्वामिन्। तुम्हारे से भिन्न दूसरा कोई इस पृथिव्यादि भूतों तथा सब पदार्थों से तथा रूपों से अधिक बलवान नहीं हुआ है, अर्थात् तुमही सर्वोपरि बलवान हो। हम जिन इच्छाओं को करते हुए तेरा यजन करते हैं वह हमें प्राप्त हो। जिससे हम सब धनों के स्वामी होवें॥ ७॥

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत॥ ८॥

विद्वान् ब्राह्मण, सोम के रस का सेवन करने वाले पितर हमारी रक्षा करें। कल्याणकारिणी, अपराध रहित होने से अपराधों को दूर करने वाली द्यावा पृथ्वी और पूषा हमारी रक्षा करें। यही पूषा पापों से हमारी रक्षा करें; और कोई भी दुष्ट हमारे ऊपर शासन करने में समर्थ न हो अर्थात् हम पर कोई भी दुष्ट शासन न करे॥ ८॥

ब्रह्माणि मे मतयः शं सुतासः शुष्म इयर्ति प्रभृतो मे अद्रिः।
आ शासते प्रतिं हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ॥ ९॥

पुत्र या मननशील जन मुझसे वेदमन्त्रों के ज्ञान की कामना करते हैं, और वे इन वेदवचनों को ही चाहते हैं। मेरे द्वारा उत्तम रीति से ज्ञान देने वाला आचार्य ही उनको सुख प्रदान करता है। ज्ञान को धारण करने वाले और अज्ञान को नाश करने वाले हम दोनों को नाना प्रकार के वेदज्ञान प्राप्त हों॥ ९॥

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे।
उप प्र यन्तु मरुतः सदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा॥ १०॥

ब्रह्मरूप वेद के पालक! उठो। देव बनने की कामना करते हुए हम आपकी प्रार्थना करते हैं, सुन्दर दान देने वाले मरुत् आपके समीप प्राप्त हों। हे इन्द्र! साथ रहने के कारण सब प्रकार से सुयोग्य कार्य करने वाले हों॥ १०॥

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे॥ ११॥

ब्रह्मणस्पति अवश्य ही योग्य मंत्र का हमसे विशेषरीति से उच्चारण कराता है, जिस मन्त्र में इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा आदि देवगण अपने रहने के लिये स्थान बनाये है॥ ११ ॥

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥
य इमा विश्वां विश्वकर्मा यो नः पिता ऽन्नपतेऽन्नस्य नो देहि॥ १२॥

ब्रह्माण्ड के रक्षक ईश्वर! तुम इस जगत् के नियन्ता हो हमारी स्तुति को जानो, और हमारे सन्तानों पर प्रीति करो, देवगण जिस कल्याण का पालन करते है यह सम्पूर्ण कल्याण हमको प्राप्त हो, और कल्याणरूप पुत्रों वाले हम यज्ञ में बहुत प्रवचन करने वाले हों। जो इस सम्पूर्ण विश्व का निर्माण करने वाला है, जो परमात्मा हमारा पालक है, वह हमारी सब प्रकार से रक्षा करें। हे अन्न के स्वामी! आप हमारे लिये अन्न के प्रदान करने वाले होइये अर्थात् हमें उत्तम अन्न प्रदान कीजिये॥ १२॥



ज्येष्ठब्रह्मसूक्तम्

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ १ ॥

जो भूतकाल के और भविष्यकाल के तथा वर्तमानकाल के भी जो सब पर अधिष्ठाता होकर रहता है, जिसका केवल प्रकाशमय स्वरूप है, उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिये नमस्कार है ॥ १ ॥

स्कम्भेनेमे विष्टाभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः।
स्कम्भ इदं सर्वमात्मन्वद्यत्प्राणन्निमिषच्च यत् ॥ २ ॥

इस सर्वाधार परमात्मा में थोपे हुए द्युलोक और भूमि ये ठहरे हैं, जो प्राण धारण करता है और जो आँखें झपकता है, यह सब आत्मा से युक्त विश्व स्कंभ में है ॥ २ ॥

तिस्रो ह प्रजा अत्यायमायन् न्यन्या अर्कमभितोऽविशन्त।
बृहन् ह तस्थौ रजसो विमानो हरितो हरिणीरा विवेश ॥ ३ ॥

तीन प्रकार की प्रजाएं अतिक्रमण को प्राप्त होती है, एक प्रकार की (सत्त्वगुणीप्रजा) सूर्य को प्राप्त होती है, दूसरी बड़े रजोलोक को मापती हुई रहती है, और तीसरी हरण करनेवाली हरिद्वर्ण को प्रविष्ट होती है ॥ ३ ॥

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत।
तत्राहतास्त्रीणि शतानि शङ्कवः षष्टिश्च खीला अविचाचला ये ॥ ४ ॥

बारह प्रधियां है, एक चक्रं है, तीन नाभियां हैं, कौन भला उसे जानता है ? उस चक्र में तीन सौ साठ खूटियां लगायीं हैं और उतने ही खील लगाये हैं, जो हिलने वाले नहीं हैं ॥ ४ ॥

इदं सवितर्वि जानाहि षड्यमा एक एकजः।
तस्मिन् हापित्वमिच्छन्ते य एषामेक एकजः ॥ ५ ॥

हे सविता ! यह आप जान ले कि यहाँ छः समूल (जोड़े) हैं

और एक अकेला है। जो इनमें अकेला एक है उसमें निश्चय से अपना सम्बन्ध जोड़ने की इच्छा अन्य करते हैं॥ ५॥

आविः सन्निहितं गुहा जरन्नाम महत्पदम्।
तत्रेदं सर्वमर्पितमेजत्प्राणत्प्रतिष्ठितम्॥ ६॥

गुहा में संचार करने वाला जो बढ़ा प्रसिद्ध स्थान है, वह प्रकट होने योग्य संनिध भी है, जो कांपनेवाला और प्राणवाला है, वह वहीं उस गुहा में समर्पित और प्रतिष्ठित है॥ ६॥

एकचक्रं वर्तत एकनेमि सहस्त्राक्षरं प्र पुरे नि पश्चा।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं क्व तद्बभूव॥ ७॥

एक चक्र एक ही मध्यनाभि वाला है, जो हजारों आरों से युक्त आगे और पीछे होता है। आधे से सब भुवन बनाये हैं और जो इसका आधा भाग है, वह कहाँ रहा है॥ ७॥

पञ्चवाही बहत्यग्रेमेषां प्रष्टयो युक्ता अनुसंवहन्ति।
अयातमस्य ददृशे न यातं परं नेदीयोऽवरं दवीयः॥ ८॥

इनमें जो पाँचो से उठायी जाने वाली है, वह अन्त तक पहुँचती है। जो घोड़े जोते हैं, वे ठीक प्रकार उठा रहे हैं। इसका न चलना ही दीखता है। परन्तु चलना नहीं दीखता। तथा बहुत दूर का बहुत समीप है और जो पास है, वही अति दूर है॥ ८॥

तिर्यग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुध्नस्तस्मिन् यशो निहितं विश्वरूपम्।
तदासत ऋषयः सप्त साकं ये अस्य गोपा महतो बभूवुः॥ ९॥

तिरछे मुखवाला और ऊपर पृष्ठभाग वाला एक पात्र है उसनें नाना रूपवाला यश रखा है। वहाँ साथ साथ सात ऋषि बैठे हैं जो इस महानुभाव के संरक्षक हैं॥ ९॥

या पुरस्ताद्युज्यते या च पश्चाद्या विश्वतो युज्यते या च सर्वतः।
यया यज्ञः प्राङ् तायते तां त्वा पृच्छामि कतमा सर्चाम्॥ १०॥

जो आगे और पीछे जुड़ी रहती है, जो चारों ओर से सब प्रकार जुड़ी रहती है। जिससे यज्ञ पूर्व की ओर फैलाया जाता है, उस विषय में मैं तुझे पूछता हूँ ऋचाओं में वह कौन सी है?॥ १०॥

यदेजति पतति यच्च तिष्ठति प्राणदप्राणन्निमिषच्च यद्भवत्।
तद्दाधार पृथिवीं विश्वरूपं तत्संभूय भवत्येकमेव॥ ११॥

जो कांपता है, गिरता है और जो स्थिर रहता है, जो प्राण धारण करने वाला प्राणरहित और जो निमेषोन्मेष करता है और जो होता हैं, वह विश्वरूपी सत्त्व इस पृथ्वी का धारण करता है वह सब मिलकर एक ही होता है॥ ११॥

अनन्तं विततं पुरुत्रानन्तमन्तवच्चा समन्ते।
ते नाकपालश्चरति विचिन्वन्विद्वान्भूतमुत भव्यमस्य॥ १२॥

अनन्त चारों ओर फैला है, अनन्त और अन्तवाला ये दोनों एक दूसरे से मिले हैं। इसके भूतकालीन और भविष्यकालीन तथा वर्तमानकालीन सब वस्तु मात्र के सम्बन्ध में विवेक करता हुआ और पश्चात् सबको जानता हुआ, सुखपालक चलता है॥ १२॥

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरदृश्यमानो बहुधा वि जायते।
अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः॥ १३॥

प्रजापति अदृश्य होता हुआ गर्भ के अन्दर संचार करता है, और वह अनेक प्रकार से उत्पन्न होता है। आधे भाग से सब भुवनों को उत्पन्न करता है, जो इसका दूसरा आधा है, उसकी निशानी क्या है?॥ १३॥

ऊर्ध्वं भरन्तमुदकं कुम्भेनेवोदहार्यम्।
पश्यन्ति सर्वे चक्षुषा न सर्वे मनसा विदुः॥ १४॥

जैसा घड़े से जल को भरकर ऊपर लाने वाला कहार होता है। सब आँख से देखते हैं, परन्तु सब मनसे नहीं जानते॥ १४॥

दूरे पूर्णेन वसति दूर ऊनेन हीयते।
महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये तस्मै बलिं राष्ट्रभृतो भरन्ति॥ १५॥

पूर्ण होने पर भी दूर रहता है, न्यून होने पर भी दूर ही रहता है। विश्व के बीच में बड़ा पूज्य देव है, उसके लिये राष्ट्र-सेवक अपना बलिदान करते हैं॥ १५॥

यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति।
तदेव मन्येऽहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किं चन॥ १६॥

जहाँ से सूर्य उगता है और जहाँ अस्त को जाता है, वही श्रेष्ठ है, ऐसा मैं मानता हूँ, उसका अतिक्रमण कोई नहीं करता॥ १६॥

ये अर्वाङ् मध्य उत वा पुराणं वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति।
आदित्यमेव ते परि वदन्ति सर्वे अग्निं द्वितीयं त्रिवृतं च हंसम्॥ १७॥

जो उरेवाले बीच के अथवा पुराने वेदवेत्ता की चारों ओर से प्रशंसा करते हैं, वे सब आदित्य की ही प्रशंसा करते हैं दूसरा अग्नि और त्रिवृत हंस की ही प्रशंसा करते हैं॥ १७॥

सहस्राह्ण्यं वियतावस्य पक्षौ हरेर्हंसस्य पततः स्वर्गम्।
स देवान्त्सर्वानुरस्युपदद्य संपश्येन् याति भुवनानि विश्वा॥ १८॥

स्वर्ग को जाते हुए इसके दोनों पक्ष सहस्र दिनों तक फैलाये रहते हैं। वह सब देवों को अपनी छाती पर लेकर सब भुवनों को देखता हुआ जाता है॥ १८॥

सत्येनोर्ध्वस्तपति ब्रह्मणाऽर्वाङ्वि पश्यति।
प्राणेन तिर्यङ्प्राणति यस्मिन् ज्येष्ठमधि श्रितम्॥ १९॥

सत्य के साथ ऊपर तपता है, ज्ञान से नीचे देखता है। प्राण से तिरछा प्राण लेता है, जिसमें श्रेष्ठ ब्रह्म रहता है॥ १९॥

यो वै ते विद्यादुरणी याभ्यो निर्मथ्यते वसु।
स विद्वान् ज्येष्ठं मन्येत स विद्याद् ब्राह्मणं महत्॥ २०॥

जो उन दोनों अरणियों को जानता है, जिससे वसु निर्माण किया जाता है। वह ज्ञानी ज्येष्ठ ब्रह्म को जानता है और वह बड़े ब्रह्म को भी जानता है॥ २०॥

अपादग्रे समभवत् सो अग्रे स्व राभरत्।
चतुष्पाद् भूत्वा भोग्यः सर्वमादत्त भोजनम्॥ २१॥

प्रारम्भ में पादरहित आत्मा एक ही था। वह प्रारम्भ में स्वात्मानन्द भरता रहा। वही चार पांव वाला भोग्य होकर सब भोजन को प्राप्त करने लगा॥ २१॥

भोग्यो भवदथो अन्नमदद्बहु।
यो देवमुत्तरावन्तमुपासातै सनातनम्॥ २२॥

वह भोग्य हुआ बहुत अन्न खाने लगा। जो सनातन और श्रेष्ठ देवकी उपासना करता है॥ २२॥

सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात्पुनर्णवः।
अहोरात्रे प्र जायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः॥ २३॥

इसे सनातन कहते हैं और वह आज ही फिर नया होता है। इससे परस्पर के रूप के दिन और रात्रि होते हैं॥ २३॥

शतं सहस्रमयुतं न्यर्बुदमसंख्येयं स्वमस्मिन्निविष्टम्।
तदस्य घ्नन्त्यभिपश्यत एव तस्माद्देवो रोचत एष एतत्॥ २४॥

सौ, हजार, दस हजार, लाख अथवा असंख्य स्वत्व इसमें हैं। इसके देखते ही वह सत्त्व आघात करता है इससे यह देव इसको प्रकाशित करता है॥ २४॥

बालादेकमणीयस्कमुतैकं नैव दृश्यते।
ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया॥ २५॥

एक बाल से भी सूक्ष्म है, और दूसरा दीखता ही नहीं। उससे जो दोनों को आलिंगन देने वाली देवता है; वह मुझे प्रिय है॥ २५॥

इयं कल्याण्यजरा मर्त्यस्यामृता गृहे।
यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः॥ २६॥

यह कल्याण करने वाली अक्षय है, मरनेवाले के घर में अमर है। जिसके लिये की जाती है, वह लेटता है और जो करता है वह वृद्ध होता है॥ २६॥

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः॥ २७॥

तू स्त्री है और तू ही पुरुष है। तू लड़का है और लड़की भी तू ही है। तू वृद्ध होने पर दण्ड के सहारे चलता है, तू प्रकट होकर सब ओर मुखवाला होता है॥ २७॥

उतैषां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः।
एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः॥ २८॥

इनका पिता, और इनका पुत्र इनमें ज्येष्ठ अथवा कनिष्ठ, यह सब एक ही देव मन में प्रविष्ट होकर पहिले जो हुआ था, वही गर्भ में आता है॥ २८॥

पूर्णात्पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते।
उतो तदद्य विद्याम यतस्तत्परिषिच्यते॥ २९॥

पूर्ण से पूर्ण होता है, पूर्ण ही पूर्ण के द्वारा सींचा जाता है, अब आज वह हम जाने, कि जहाँ से वह सींचा जाता है॥ २९॥

एषा सनत्नी सनमेव जातैषा पुराणी परि सर्वं बभूव।
मही देव्युषसो विभाती सैकेनैकेन मिषता वि चष्टे॥ ३०॥

यह सनातन शक्ति है, सनातन काल से विद्यमान है, यही पुरानी शक्ति सब कुछ बनी है, यही बड़ी देवी उषाओं को प्रकाशित करती है, वह अकेले अकेले प्राणी के साथ दीखती है॥ ३०॥

अविर्वै नाम देवतर्तेनास्ते परीवृता।
तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्त्रजः॥ ३१॥

रक्षणकर्त्री नामक एक देवता है, वह सत्य से घिरी हुई है। उसके रूप से ये सब वृक्ष हरे और हरे फूलों वाले हुए हैं॥ ३१॥

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीयति॥ ३२॥

समीप होने पर भी वह छोड़ता नहीं और वह समीप होने पर भी दीखता भी नहीं। इस देव का यह काव्य देखो, जो नहीं मरता और नहीं जीर्ण होता है॥ ३२॥

अपूर्वेणेषिता वाचस्ता वदन्ति यथायथम्।
वदन्तीर्यत्र गच्छन्ति तदाहुर्ब्राह्मणं महत्॥ ३३॥

जिसके पूर्व कोई नहीं है, इस देवता ने प्रेरित की ये वाचाएँ हैं, वह वाणियां यथायोग्य वर्णन करती हैं। बोलती हुई जहाँ पहुँचती हैं, वह बड़ा ब्रह्म है, ऐसा कहते हैं॥ ३३॥

यत्र देवाश्च मनुष्याश्चारा नाभाविव श्रिताः।
अपां त्वा पुष्पं पृच्छामि यत्र तन्मायया हितम्॥ ३४॥

देव और मनुष्य नाभि में लगे हुए आरे के समान जहाँ आश्रित हुए हैं, उस आप-तत्त्व के पुष्प को मैं आपसे पूछता हूँ, कि जहाँ वह माया से आच्छादित होकर रहता है॥ ३

येभिर्वात इषितः प्रवाति ये ददन्ते पञ्च दिशः सध्रीचीः।
य आहुतिमत्यमेन्यन्त देवा अपां नेतारः कतमे त आसन्॥ ३५॥

जिनसे प्रेरित हुआ वायु बहता है, जो मिली-जुली पाँचों दिशायें धारण करते हैं, जो देव आहुति को अधिक मानते हैं, वे जलों के नेता कौन से हैं ?॥ ३५॥

इमामेषां पृथिवीं वस्त एकोऽन्तरिक्षं पर्येको बभूव।
दिवप्रेषां ददते यो विधर्ता विश्वा आशाः प्रति रक्षन्त्येके॥ ३६॥

इनमें से एक इस पृथ्वी पर रहता है एक अन्तरिक्ष में व्यापता है, इनमें जो धारक है, वह द्युलोक को धारण करता है, और सब कुछ दिशाओं की रक्षा करते हैं॥ ३६॥

यो विद्यात्सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः।
सूत्रं सूत्रस्य यो विद्यात्स विद्याद् ब्राह्मणं महत्॥ ३७॥

जिसमें यह सब प्रजा पिरोयी हैं, जो इस फैले सूत्र को जानता है, और सूत्र के सूत्र को जानता है, वह बड़े ब्रह्म को जानता है॥३७॥

वेदाहं सूत्रं विततं यस्मिन्नोताः प्रजा इमाः।
सूत्रं सूत्रस्याहं वेदार्थो यद्ब्राह्मणं महत्॥ ३८॥

जिसमें ये प्रजाएँ पिरोयी है, मैं यह फैला हुआ सूत्र जानता हूँ। सूत्र का सूत्र भी मैं जानता हूँ और जो बड़ा ब्रह्म है, वह भी मैं जानता हूँ॥३८॥

यदन्तरा द्यावापृथिवी अग्निरैत्प्रदहन्विश्वदाव्यः।
यत्रातिष्ठन्नेकपत्नीः परस्तात् क्वेवासीन्मातरिश्वा तदानीम्॥ ३९॥

जो द्युलोक और पृथ्वी के बीच में विश्व को चलाने वाला अग्नि होता है, जहाँ दूर तक एक पत्नी ही रहती है, उस समय वायु कहाँ था ?॥ ३९॥

अप्स्वासीन्मातरिश्वा प्रविष्टः प्रविष्टा देवाः सलिलान्यासन्।
बृहन्ह तस्थौ रजसो विमानः पवमानो हरित आ विवेश॥ ४०॥

वायु जलों में प्रविष्ट था, सब देव जलों में प्रविष्ट थे, उस समय वह ही रज का विशेष प्रमाण था, और वायु सूर्यकिरणों के साथ था॥ ४०॥

उत्तरेणेव गायत्रीममृतेऽधि वि चक्रमे।
साम्ना ये साम संविदुरजस्तद्ददृशे क्व॥ ४१॥

उच्चतर रूप से अमृत में गायत्री को विशेष रीति से प्राप्त करते हैं। जो साम से साम जानते हैं, वह अजन्मा ने कहाँ देखा?॥ ४१॥

निवेशनः संगमनो वसूनां देव इव सविता सत्यधर्मा।
इन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम्॥ ४२॥

सत्य के धर्म से युक्त सविता देव के समान सब धनों का देने वाला और निवास का हेतु है वह धनों के युद्ध में इन्द्र के समान स्थिर रहता है॥ ४२॥

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम्।
तस्मिन्यद्यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्मविदो विदुः॥ ४३॥

नव द्वारवाला कमल सत्त्व-रज-तम इन तीन गुणों से घिरा हुआ है। उसमें जो आत्मावाला पूज्य देव है उसे ब्रह्मज्ञानी जानते हैं॥ ४३॥

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान्न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्॥ ४४॥

निष्काम, धीर, अमर, स्वयंभू रस से संतुष्ट वह देव कहाँ से भी न्यून नहीं है, उसे जानने वाला ज्ञानी मृत्यु से डरता नहीं; क्योंकि वही धीर, अजर, युवा आत्मा है॥ ४४॥

ज्येष्ठब्रह्मसूक्त समाप्त॥



ब्रह्माराधनमन्त्रा:

प्रजापतिर्जनयति प्रजा इमा धाता दधातु सुमनस्यमानः।
संजानानाः संमनसः सयोनयो मयिं पुष्टं पुष्टपतिर्दधातु॥ १॥

प्रजापालक परमेश्वर इन सब प्रजाओं को उत्पन्न करता है, और वही उत्तम मनवाला, धारक देव इनको धारण करता है। इससे प्रजाएँ ज्ञान प्राप्त करके एक मत से कार्य करने वाली, एक विचारवाली और एक कारण से बंधी होकर रहती हैं। इन प्रजाओं में रहने वाले मुझे पुष्टि को देनेवाला ईश्वर पुष्टि देवे॥ १॥

प्रजापतिर्मा प्रजननवान्त्सह प्रतिष्ठाया ध्रुवायां दिशः
पातु तस्मिन् क्रमे तस्मिंछ्रये तां पुरं प्रैमि।
स मा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मां आत्मानं परिं ददे स्वाहा॥ २॥

सकल जगत् की उत्पत्ति के साधन प्रजनन से सम्पन्न मनुष्य आदि चराचरात्मक प्रजाओं के पति प्रजनन के साथ सब जगत् की आधारभूत स्थिरभूमिदिशा (अधरदिशा) से मेरी रक्षा करें। प्रजनन सम्पन्न प्रजापति के रक्षक होने के कारण मैं पैर उठाता हूँ और स्थान का आश्रय लेता हूँ, जिस शय्यागृहरूप पुर में मैं जा रहा हूँ तहाँ प्रजापति मेरी रक्षा करें, मेरा पालन करें। मैं रक्षक प्रजापति के लिये अपने को अर्पण करता हूँ= रक्षा के लिये अर्पण करता हूँ। स्वाहा॥ २॥

३. ब्रह्मणे स्वाहा॥



विष्णुना कृतो ब्रह्मस्तवः

विष्णु०

नमोऽस्त्वनन्ताय विशुद्धचेतसे स्वरूपरूपाय सहस्त्रबाहवे।
सहस्त्ररश्मिप्रभवाय वेधसे विशालदेहाय विशुद्धकर्मणे॥ १॥

विष्णु बोले— अनन्त नाम रूप वाले, विशुद्धचित्त, स्वरूप-स्थित, सहस्त्रबाहु, सूर्य के समान समर्थ, विशाल शरीर धारी एवं विशुद्ध (पवित्र) चेष्टाओं वाले आप ब्रह्माजी को मेरा प्रणाम है॥ १॥

समस्तविश्वार्तिहराय शम्भवे समस्तसूर्यानिलतिग्मतेजसे।
नमोऽस्तु विद्यावितताय चक्रिणे समस्तधीस्थानकृते सदा नमः॥ २॥

हे ब्रह्मन्! समस्त संसार के सभी प्रकार के कष्टों को दूर करने वाले, शङ्कर स्वरूप सम्पूर्ण सूर्य और अग्नियों के समान तीक्ष्ण तेज वाले, विद्या के प्रभाव से तीव्र ज्ञानमय, चक्रधारी, समस्त बुद्धियों के एकमात्र ज्ञेय आपको मेरा सदा प्रणाम है॥ २॥

अनादिदेवाच्युतशेखर प्रभो भाव्युद्भवद्भूतपते महेश्वर।
महत्पते सर्वपते जगत्पते भुवस्पते भुवनपते सदा नमः॥ ३॥

हे अनादिदेव! अच्युत! शेखर! हे स्वामिन्! भूत भविष्यद् एवं वर्तमान के अधिकारी, हे महेश्वर! हे महत्पते! हे जगत्पते! हे सर्वपते! हे पृथ्विपते! हे लोकपते! आपको सदा प्रणाम है॥ ३॥

यज्ञेश नारायण जिष्णुशङ्कर क्षितीश विश्वेश्वर विश्वलोचन।
शशाङ्कसूर्याच्युत वीर विश्वप्रवृत्तमूर्तेऽमृतमूर्त अव्यय॥ ४॥

हे यज्ञेश! हे नारायण! हे जयशील शङ्कर! हे पृथ्वीपते! हे जगदीश्वर! हे विश्व के मार्गदर्शक! हे चन्द्रमा एवं सूर्य के समान अपनी चेष्टाओं में निरन्तर उत्साहित! हे विश्वमय देह (शरीर) वाले! हे अमृतमूर्ति! हे अविनाशिन्! आपको प्रणाम है॥ ४॥

ज्वलद्धुताशार्चिनिरुद्धमण्डलप्रदेश नारायण विश्वतोमुख।
समस्तदेवार्तिहरामृताव्यय प्रपाहि मां शरणगतं तथा विभो॥ ५॥

प्रज्वलित अग्नि की कान्ति के समान प्रदीप्त आभामण्डल वाले! हे नारायण! हे चारों तरफ मुख वाले! सम्स्त देवताओं के कष्टों को दूर करने में अमृतस्वरूप, हे अविनाशिन्! हे प्रभो! मैं आपकी शरण में आया हूँ। आप मेरी रक्षा करें॥ ५॥

वक्त्राण्यनेकानि विभो तवाहं पश्यामि यज्ञस्य गतिं पुराणम्।
ब्रह्माणमीशं जगतां प्रसूतिं नमोऽस्तु तुभ्यं प्रपितामहाय॥ ६॥

हे प्रभो! मैं आपके अनेक मुख देख रहा हूँ, जो कि सभी यज्ञों की एकमात्र सीमा (गति) हैं। हे पुराण पुरुष! हे प्रपितामह! जगत् की सृष्टि करने वाले ब्रह्मा जी! आप को मेरा प्रणाम है॥ ६॥

संसारचक्रक्रमणैरनेकैः क्वचिद् भवान् देववराधिदेवः।
तत्सर्वविज्ञानविशुद्धसत्त्वैरुपास्यसे किं प्रणमाम्यहं त्वाम्॥ ७॥

हे देवताओं में बृहद् देव! इस संसार में अनेक चक्र घूमने (जन्म-मरण) के बाद ही कभी आप की प्राप्ति (दर्शन) हो पाती है। अतः आप सब तरह से निर्दोष निर्विकार हो एवं निर्मल चित्त वाले ज्ञानियों द्वारा ही आप की उपासना की जा सकती है। अतः मैं आप को प्रणाम करता हूँ॥ ७॥

एवं भवन्तं प्रकृतेः पुरस्ताद् यो वेत्त्यसौ सर्वविदां वरिष्ठः।
गुणान्वितेषु प्रसभं विवेद्यो विशालमूर्तिस्त्विह सूक्ष्मरूपः॥ ८॥

इस तरह जो साधक आप को प्रकृति से भी आगे (उत्कृष्ट) समझता है वही सब ज्ञानियों में श्रेष्ठ है। आप सब गुणवानों में श्रेष्ठ हैं, अतः आप सबके आराध्य हैं। आप विशाल शरीर से होते हुए भी सूक्ष्म रूप हैं॥ ८॥

वाक्पाणिपादैर्विगतेन्द्रियोऽपि कथं भवान् वै सुगतिः सुकर्मा।
संसारबन्धे निहतेन्द्रियोऽपि पुनः कथं देववरोऽसि वेद्यः॥ ९॥

आप वाणी हाथ पैर आदि इन्द्रियों से विकल (रहित) होकर भी कैसे इतनी अच्छी (विशुद्धि) गति एवं निर्मल चरित्र वाले हैं।

यद्यपि संसार के बन्धन में आपका चित्त किञ्चित्मात्र भी आसक्त नहीं है फिर भी आप जगत् की सृष्टि करने में निरन्तर दत्तचित्त रहते हैं॥ ९॥

मूर्त्तादमूर्त्तं न तु लभ्यते परं परं वपुर्देव विशुद्धभावैः।
संसारविच्छित्तिकरैर्यजद्भिरतोऽवसीयेत चतुर्मुखत्वम्॥ १०॥

हे देव! स्थूल से सूक्ष्म शरीर साधारणतः नहीं मिला करता। अतः भवबन्धन को काटने वाले विशुद्ध हृदय याज्ञिकों (ज्ञानियों) ने आप में चतुर्मुखत्व की कल्पना की॥ १०॥

परं न जानन्ति यतो वपुस्ते देवादयोऽप्यद्भुतरूपधारिन्!
विभोऽवतारेऽग्रतरं पुराणमाराधयेद् यत् कमलासनस्थम्॥ ११॥

हे अद्भुतरूपधारिन्! आज तक कोई भी आप के शरीर का प्रमाण नहीं जान सका है। अतः यही उचित है कि आपके आदि रूप पुराणपुरुष के अवतार की आराधना की जाय॥ ११॥

न ते तत्त्वं विश्वसृजोऽपि योनिमेकान्ततो वेत्ति विशुद्धभावः।
परं त्वहं वेद्मि कथं पुराणं भवन्तमाद्यं तपसा विशुद्धम्॥ १२॥

जब कोई विशुद्ध हृदय ज्ञानी भी आप जगत्स्रष्टा के तत्त्व को पूर्णतः नहीं पा सका तो मैं पामर आप तपोनिष्ठ पुराण पुरुष के विषय में क्या जान सकता हूँ॥ १२॥

पद्मासनो वै जनकः प्रसिद्ध एवं प्रसिद्धिर्ह्यसकृत् पुराणात्।
सञ्चिन्त्यतेनाथ विभुं भवन्तं जानाति नैवं तपसा विहीनः॥ १३॥

पद्मासनस्थ ब्रह्मा (जगत् के) जन्मदाता के रूप में प्रसिद्ध हैं। ऐसा पुराणों में बार बार कहा गया है। इसीलिये हमलोग आप के उस पुराण रूप की ही आराधना करते हैं। परन्तु इस रहस्य को कोई तपोविहीन साधारण पुरुष नहीं समझ सकता॥ १३॥

अस्मादृशैश्च प्रवरैर्विबोध्यं त्वां देव मूर्खाः स्वमतिं विभज्य।
प्रबोद्धुमिच्छन्ति न तेषु बुद्धिरुदारकीर्तिस्वपि वेदहीनाः॥ १४॥

हे देव! आप का रहस्य हम जैसे ज्ञानी पुरुष जो जान पाये हैं; परन्तु साधारण अज्ञानी पुरुष विविध मतवादों के भ्रम जाल में फँसकर

आपका रहस्य जानने का प्रयास करते हैं, यद्यपि उनके ज्ञान का जनता में बहुत आदर है, परन्तु वे आपके वास्तविक रहस्यज्ञान से बहुत दूर हैं ॥ १४ ॥

जन्मान्तरैर्वेदविवेकबुद्धिभिर्भवेद् यथा वा यदि वा प्रकाशः।
तल्लाभलुब्धस्य न मानुषत्वं न देवगन्धर्वपतिः शिवः स्यात् ॥ १५ ॥

जन्म जन्मान्तर के वेदाध्ययन से निर्मल बुद्धि वाला कोई ज्ञानी पुरुष आपके विषय में किञ्चित् रहस्य भले ही जान ले; परन्तु इतने से ही वह आपके विषय में कुछ भी साधिकार नहीं बोल सकता। भले ही वह देव तथा गन्धर्वों का स्वामी (इन्द्र) या भगवान् शङ्कर ही क्यों हों ॥ १५ ॥

न विष्णुरूपो भगवन् सुसूक्ष्मः स्थूलोऽसि देवः कृतकृत्यतायाः।
स्थूलोऽपि सूक्ष्मः सुलभोऽसि देव! त्वद्बाह्यकृत्या नरके पतन्ति ॥ १६ ॥

हे भगवन्! मेरे विष्णुरूप को कितना भी सूक्ष्मरूप क्यों न बताया जाय, परन्तु आपका स्थूलरूप ही (सृष्टिरचना की) कृतकृत्यता की सीमा तक पहुँच चुका है। आपके स्थूल तथा सूक्ष्म— दोनों ही रूप साधारण भक्तजन के लिये भी सुलभ हैं। अतः कोई भी प्राणी आपकी आराधना से दूर रहकर अपने लिये नरक में ही स्थान बनाता है ॥ १६ ॥

विमुच्यते वा भवति स्थितेऽस्मिन् दस्त्रेन्दु वह्न्यर्कमरुन्महीभिः।
तत्त्वैः स्वरूपैः समरूपधारिभिरात्मस्वरूपे विततस्वभावः ॥ १७ ॥

भगवन्! आपके स्वरूप में स्थित रहते हुए आराधक अश्विनी-कुमार, सूर्य एवं चन्द्रमा, अग्नि या वायु पृथ्वी तत्त्वों की आसक्ति से विमुक्त हो जाता है ॥ १७ ॥

इति स्तुतिं मे भगवन् ह्यनन्तजुषस्व भक्तस्य विशेषतश्च।
समाधियुक्तस्य विशुद्धचेतसस्त्वद्भावभावैकमनोऽनुगस्य ॥ १८ ॥

अतः हे ब्रह्मन्! आप अपने इस असाधारण भक्त की स्तुति स्वीकार करें जिसका कि समाधि में निरन्तर रत रहने के कारण चित्त निर्मल हो चुका है और वह सततरूपेण आप की ही आराधना में मग्न रहता है ॥ १८ ॥

सदा हृदिस्थो भगवन्नमस्ते नमामि नित्यं भगवन् पुराण!
इति प्रकाशं तव मे तदीश स्तवं मया सर्वगतिप्रबुद्ध! ॥ १९ ॥

हे पुराणपुरुष! भगवन्! आप मेरे हृदय में नित्य विराजमान रहते हैं। अतः हे सभी गतियों के ज्ञाता! मेरी इस स्तुति को स्वीकार करें ॥ १९ ॥

संसारचक्रे भ्रमणादियुक्ता भीतिं पुनर्नः प्रतिपालयस्व ॥ २० ॥

और आप संसार चक्र में भ्रमण से भीत हमारी सर्वथा रक्षा करें ॥ २० ॥

पद्मपुराण में श्रीविष्णुकृत ब्रह्मस्तव सम्पूर्ण ॥



स्कन्दपुराणतः—

अभीष्टदः स्तवः

व्यास०

इति व्याकुलिते लोके सुरासुरनरोरगे।
आः किमेतदकाण्डेऽभूद् रुरुदुर्दुद्रुवुः प्रजाः ॥ १ ॥

महर्षि व्यास— (विन्ध्याचल द्वारा सूर्यपथ अवरुद्ध करने से) देवलोक (स्वर्ग) असुरलोक, मनुष्यलोक (भूलोक) एवं नागलोक (पाताल) आदि लोकों के वासियों के दु:खी, व्यग्र एवं भयभीत होने पर संसार के साधारण प्रजाजन भी रोने-कलपने लगे कि यह असमय में क्या भयानक कुकृत्य हो गया! ॥ १ ॥

ततः सर्वे समालोक्य ब्रह्माणं शरणं ययुः।
स्तुवन्तो विविधैः स्तोत्रै रक्ष रक्षेति चाब्रुवन् ॥ २ ॥

तब सभी प्रमुख देवताओं ने इस घटना पर बहुत कुछ सोच-विचार किया और अन्त में वे देवाधिदेव ब्रह्मा की शरण में पहुँचे और विविध स्तोत्रों से उनकी स्तुति की तथा इस भयानक कृत्य से रक्षा हेतु उनसे यों निवेदन करने लगे ॥ २ ॥

देवा०

''नमो हिरण्यरूपाय ब्रह्मणे ब्रह्मरूपिणे।
अविज्ञातस्वरूपाय कैवल्यायामृताय च ॥ ३ ॥

देवगण— ''हे सुवर्णमय देव! आपको प्रणाम है। आप तो ब्रह्मा के रूप में ब्रह्म ही हैं। आपका वास्तविक रूप कोई नहीं पहचान पाया। आप इस संसार में असङ्ग, अलिप्त अतएव स्वरूप में स्थित तथा अमर एवं अविनाशी हैं ॥ ३ ॥

यन्न देवा विजानन्ति मनो यत्रापि कुण्ठितम्।
न यत्र वाक् प्रसरति नमस्तस्मै चिदात्मने ॥ ४ ॥

आपके वास्तविक स्वरूप को आज तक कोई भी देवता नहीं

जान पाया। आपकी वास्तविकता को जानने में सभी की बुद्धि (मन) कुण्ठित हो चुकी है। आपके विषय में वाणी द्वारा भी कोई विशेष वर्णन नहीं किया जा सकता। अत: हे चिदात्मन् (परमात्मन्!) आप को हमारा प्रणाम है ॥ ४ ॥

योगिनो यं हृदाकाशे प्रणिधानेन निश्चला:।
ज्योतीरूपं प्रपश्यन्ति तस्मै श्रीब्रह्मणे नमः ॥ ५ ॥

योगिजन एकाग्रमन में समाधि द्वारा अपने हृदयाकाश में जिस ज्योतिर्मय (तेज:पुञ्ज) ब्रह्म का साक्षात्कार कर पाते हैं, वह ब्रह्म आप ही हैं। अत: ब्रह्मरूप आपको प्रणाम है ॥ ५ ॥

कालात् पराय कालाय स्वेच्छाय पुरुषाय च।
गुणत्रयस्वरूपाय नमः प्रकृतिरूपिणे ॥ ६ ॥

आप काल से भी उत्कृष्ट काल (संहारक=मृत्यु) हैं। आप स्वेच्छा से पुरुष (सृष्टिपालक) रूप भी धारण कर लेते हैं। यों आप सत्त्व, रजस एवं तमस्— इन तीनों गुणों से युक्त हैं। परन्तु आप प्राय: अपने प्रकृत रूप में स्थिर रहते हैं, अत: आपको प्रणाम है ॥६ ॥

विष्णवे सत्त्वरूपाय रजोरूपाय वेधसे।
तमसे रुद्ररूपाय स्थितिसर्गान्तकारिणे ॥ ७ ॥

आप जब सत्त्वरूप में आते हैं तब 'विष्णु' कहलाते हैं। और रजस् रूप में आते हैं तो 'ब्रह्मा' कहलाते हैं तथा तमोरूप धारण करने पर आप ही 'रुद्र' कहलाते हैं। इस तरह, संसार की सृष्टि, स्थिति एवं संहार करने वाले आप को प्रणाम है ॥ ७ ॥

नमो बुद्धिस्वरूपाय त्रिधाहंकृतये नमः।
पञ्चतन्मात्ररूपाय पञ्चकर्मेन्द्रियात्मने ॥ ८ ॥

आप ही बुद्धिरूप हैं या मन, बुद्धि एवं अहङ्कार— इन तीनों रूपों में भी आप ही विराजमान हैं। पञ्च तन्मात्राओं के रूप में आपकी ही स्थिति है और पाँच कर्मेन्द्रियाँ भी आप पर ही आधृत हैं। अत: आपको प्रणाम है ॥ ८ ॥

नमो मन:स्वरूपाय पञ्चबुद्धीन्द्रियात्मने।
क्षित्यादिपञ्चरूपाय नमस्ते विषयात्मने ॥ ९ ॥

आप ही मनः स्वरूप हैं, पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ भी आप में ही अन्तर्भुक्त हैं। साथ ही, ये पृथ्वी आदि पाँचों महाभूत भी आप के ही रूप हैं। इन पाँचों महाभूतों एवं पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के विषय आप ही हैं। अतः आप को प्रणाम है ॥ ९ ॥

नमो ब्रह्माण्डरूपाय तदन्तर्वर्त्तिने नमः।
अर्वाचीन पराचीन विश्वरूपाय ते नमः ॥ १० ॥

यह समस्त ब्रह्माण्ड आप का ही रूप है, और इस समस्त ब्रह्माण्ड में आप ही व्याप्त हैं। यह समग्र अर्वाचीन एवं पराचीन विश्व (जगत्) आप में ही ओत प्रोत है। ऐसे आप विशिष्ट रूपधारी को हमारा प्रणाम है ॥ १० ॥

अनित्यनित्यरूपाय सदसत्पतये नमः।
समस्तभक्तकृपया स्वेच्छाविष्कृतविग्रह! ॥ ११ ॥

इस चराचर जगत् में विद्यमान समस्त नित्य-अनित्य या सत्-असत् पदार्थ समूह के आप ही स्वामी हैं। आप अपने उत्तम मध्यम एवं कनिष्ठ भक्तों पर कृपा करने के लिये अपने नानाविध रूप (शरीर) स्वेच्छा से धारण करते रहते हैं। अतः आप को प्रणाम है ॥ ११ ॥

तव निःश्वसितं वेदास्तव स्वेदोऽखिलं जगत्।
विश्वा भूतानि ते पादः शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ॥ १२ ॥

बुद्धिमान् लोगों की ऐसी धारणा है कि ये चारों वेद आपके निश्वास से निःसृत हैं तथा यह समस्त जगत् आपके स्वेदविन्दुओं (पसीना) से निर्मित है। ये समस्त भूत (प्राणी) भी आप के चरणों से निःसृत हैं तथा यह अन्तरिक्ष (द्युलोक) आपके मूर्धा से निःसृत हैं ॥ १२ ॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं लोमानि च वनस्पतिः।
चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यस्तव प्रभो! ॥ १३ ॥

इसी तरह यह आकाश आपकी नाभि से निःसृत है। आपके रोमों (मृदुल केशों) से ये वनस्पतियाँ निःसृत हैं। आपके मन से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई है, और आपके नेत्रों से सूर्य की उत्पत्ति मानी जाती है ॥ १३ ॥

त्वमेव सर्वं त्वयि देव सर्वं
स्तोता स्तुतिः स्तव्य इह त्वमेव।
ईश त्वयावास्यमिदं हि सर्वं
नमोऽस्तु भूयोऽपि नमो नमस्ते''॥ १४॥

हे देव! इस दृश्यमान जगत् में सब कुछ आप ही हैं या यह समस्त जगत् आप में ही स्थित हैं। यहाँ स्तुति करने वाला, स्तुति करने योग्य एवं स्वयं स्तुति— तीनों आप ही हैं। हे ईश! इस समस्त ब्रह्माण्ड में आप ही आवास करने योग्य हैं। अतः आप को बार बार प्रणाम है''॥ १४॥

व्यास०

इति स्तुत्वा विधिं देवा निपेतुर्दण्डवत् क्षितौ।
परितुष्टस्तदा ब्रह्मा प्रत्युवाच दिवौकसः॥ १५॥

महर्षि व्यास— इस तरह जब देवताओं ने उन ब्रह्मदेव की स्तुति कर उनके सम्मुख भूमि में लेटकर दण्डवत् प्रणाम किया तो देवताओं की इस स्तुति से सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा जी ने यह उत्तर दिया॥ १५॥

ब्रह्मा०

यथार्थयाऽनया स्तुत्या तुष्टोऽस्मि प्रणताः सुराः।
उत्तिष्ठत प्रसन्नोऽस्मि वृणुध्वं वरमुत्तमम्॥ १६॥

ब्रह्मदेव— हे विनीत देवताओं! आपके द्वारा विहित मेरी इस सार्थक स्तुति से मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। आप लोग उठें। मैं आप लोगों पर अत्यधिक प्रसन्न हूँ। आप लोग मुझसे अपना मनचाहा वर माँग लें॥ १६॥

यः स्तोष्यत्यनया स्तुत्या श्रद्धावान् प्रत्यहं शुचिः।
मां वा हरं वा विष्णुं वा, तस्य तुष्टाः सदा वयम्॥ १७॥

जो श्रद्धावान् भक्त प्रतिदिन (स्नानादि से) शुद्ध होकर, आप लोगों द्वारा उक्त इस स्तोत्र से मेरी या विष्णु या शङ्कर की स्तुति करेगा उस से हम तीनों ही सदा सन्तुष्ट रहेंगे— ऐसा विश्वास कीजिये॥१७॥

दास्यामः सकलान् कामान् पुत्रान् पौत्रान् पशून् वसु।
सौभाग्यमायुरारोग्यं निर्भयत्वं रणे जयम्॥ १८॥

भले ही वह हमसे पुत्र, पौत्र, पशु, धन, सौभाग्य (ऐश्वर्य) दीर्घायु, आरोग्य या युद्ध में विजय-आदि कुछ भी माँगें; हम उसकी ये सभी इच्छाएँ पूर्ण करेंगे॥ १८॥

ऐहिकामुष्मिकान् भोगानपवर्गं तथाऽक्षयम्।
यद्यदिष्टतमं तस्य तत् तत् सर्वं भविष्यति॥ १९॥

वह भक्त इस लोक या परलोक के भोग्य पदार्थ या अक्षय मोक्षसुख अथवा जिस किसी भी अभीष्ट वस्तु की कामना करेगा वह उसे अवश्य पूर्णरूप से मिलेगी॥ १९॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पठितव्यः स्तवोत्तमः।
अभीष्टद इति ख्यातः स्तवोऽयं सर्वसिद्धिदः॥ २०॥

श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गतकाशीखण्डे द्वितीयाध्याये
अभीष्टदस्तवः समाप्तः॥

अतः सभी भक्तों को यह उत्तम स्तोत्र प्रयत्नपूर्वक पढ़ना चाहिये। आज से यह स्तोत्र 'अभीष्टद स्तव' कहलायगा, एवं यह सभी सिद्धियों का दाता होगा॥ २०॥

श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत काशीखण्ड के द्वितीय अध्याय
में अभीष्टदस्तव समाप्त॥



शक्रादिकृता ब्रह्मस्तुतिः

एवं कृते ततो देवा दूयमानेन चेतसा।
जग्मुर्जगद्गुरुं द्रष्टुं शरणं कमलोद्भवम्॥ १ ॥

ऐसा कर देने पर इन्द्रआदि देवतागण अति दुःखी चित्त से कमलयोनि ब्रह्मा की शरण में, उन्हें देखने के लिये गये॥ १ ॥

निवेदितास्ते शक्राद्याः शिरोभिर्धरणिं गताः।
तुष्टुवुः स्पष्टवर्णैर्नु वचोभिः कमलासनम्॥ २ ॥

और वहाँ जाकर उन इन्द्र आदि देवगणों ने अपने ऊपर बीती हुई सम्पूर्ण घटनाओं को उनसे निवेदित करने का विचार किया। वहाँ जाकर वे अपने अपने शिर पृथ्वी पर टेक कर बैठ गये। फिर सबों ने स्पष्ट वर्ण तथा अर्थ वाले वाक्यों से उन कमलासन भगवान् ब्रह्मा की इस प्रकार स्तुति की॥ २ ॥

देवा०

त्वमोऽङ्कारस्याङ्कुराय प्रसूतो विश्वस्यात्माऽनन्तभेदस्य पूर्वम्।
सम्भूतस्यानन्तरं सत्त्वमूर्त्ते संहारेच्छोस्ते नमो रुद्रमूर्ते॥ ३ ॥

देव—'हे विश्वात्मन्! इस अनन्त भेदवाले विश्व के तुम मूल कारण तथा उत्पत्ति के निमित्त एवं ओंकारस्वरूप हो। तुम्हारा वह पूर्वकालीन ओंकारस्वरूप ही इस जगत् वृक्ष का अङ्कुर है। हे सत्त्वमूर्ति! रचना के पीछे तुम्हीं सत्त्वरूप होकर उसका पालन करते हो, और हे रुद्रमूर्ते! संहार के अवसर पर तुम्ही भयानक रूप धारण कर सबका संहार करते हो॥ ३ ॥

व्यक्तिं नीत्वा त्वं वपुः स्वं महिम्ना तस्मादण्डात् स्वाभिधानादचिन्त्यः।
द्यावापृथ्व्योरूर्ध्वखण्डावराभ्यां ह्यण्डादस्मात् त्वं विभागं करोषि॥४॥

ऐसे त्रिगुण स्वरूप आप को हम सब लोग नमस्कार कर रहे हैं।

तुम अपनी महिमा से अपने शरीर को अण्ड रूप में परिणत करके उस अण्ड का ऊपर और नीचे— दो विभाग कर पृथ्वी और स्वर्ग की रचना करते हो। तुम अचिन्त्य हो ॥ ४ ॥

व्यक्तं मेरौ यज्ञनायुस्तवाभूद्देवं विद्मस्त्वत्प्रणीतश्चकास्ति।
व्यक्तं देवा जन्मतः शाश्वतस्य द्यौस्ते मूर्धालोचने चन्द्रसूर्यौ ॥ ५ ॥

मेरु पर्वत पर आपने जो देवादि प्राणियों की आयुःसीमा निर्धारित की थी वही आप द्वारा निर्मित विधान अभी भी प्रचलित हैं; यह हम स्पष्ट रूप से जानते हैं। हे देव! तुम अजन्मा एवं सनातन हो, स्वर्ग तुम्हारा मस्तक है, सूर्य और चन्द्रमा तुम्हारे नेत्र हैं ॥ ५ ॥

व्यालाः केशाः श्रोत्ररन्ध्रा दिशस्ते पादौ भूमिर्नाभिरन्ध्रे समुद्राः।
मायाकारः कारणं त्वं प्रसिद्धो वेदैः शान्तो ज्योतिषा त्वं विमुक्तः ॥ ६ ॥

सर्प तुम्हारे केश हैं, दिशाएँ कान हैं, पृथ्वी चरण है, समुद्र नाभि है। तुम्हीं माया के रचनेवाले तथा समस्त जगत् के आदि कारण हो। वेद-समूह तुम्हें शान्त और ज्योति से विमुक्त कहते हैं ॥ ६ ॥

वेदार्थेषु त्वां विवृण्वन्ति बुध्वा हृत्पद्मान्तःसन्निविष्टं पुराणम्।
त्वामात्मानं लब्धयोगा गृणन्ति साङ्ख्यैर्यास्ताः सप्त सूक्ष्माः प्रणीताः ॥७ ॥

बुद्धिमान् लोग वेदों के अर्थों से तुम्हे भलीभाँति जानकर हृदय कमल में विराजित पुराणपुरुष कहकर निश्चित करते हैं। सांख्य एवं योग के जानने वाले तुम्हें आत्मा कहकर मानते हैं। उनके द्वारा सात सूक्ष्म पदार्थ कहे गये हैं ॥ ७ ॥

तासां हेतुर्याऽष्टमी चापि गीता तस्यां तस्यां गीयसे वै त्वमन्तम्।
दृष्ट्वा मूर्तिं स्थूलसूक्ष्मां चकार देवैर्भावाः कारणैः कैश्चिदुक्ताः ॥८ ॥

एवं उनके कारण स्वरूप आठवाँ पदार्थ तम है, इस प्रकार आठ पदार्थ— उनके यहाँ— जो माने गये हैं, उन सब में तुम विद्यमान माने गये हो। यही नहीं, तुम उससे भी परे माने गये हो ॥८ ॥

सम्भूतास्ते त्वत्त एवादिसर्गे भूयस्तां वां वासनां तेऽभ्युपेयुः।
त्वत्सङ्कल्पानन्तमायाप्तिगूढकालो मेयो ध्वस्तसङ्ख्याविकल्पः ॥९ ॥

आदिकाल में तुमने किसी अज्ञात कारणवश अपनी मूर्ति को स्थूल तथा सूक्ष्म रूप में विविध पदार्थों में परिणत किया था।

देवादि जितने शरीरी हैं— वे सभी आपसे उद्भूत हुए हैं और आपके सङ्कल्प के अनुरूप ही उन लोगों की वैसी वैसी वासनाएँ भी उत्पन्न हुई हैं। हे देव! तुम अनन्त माया द्वारा निगूढ़ हो, एवं कल्पित संख्याओं से भी अतीत हो, काल स्वरूप हो॥ ९॥

भावाभावव्यक्तिसंहारहेतुस्त्वं सोऽनन्तस्तस्य कर्तासि चात्मन्।
येऽन्ये सूक्ष्माः सन्ति तेभ्योऽभिगीतः स्थूला भावाश्चावृतारश्च तेषाम्॥१०॥

आत्म-स्वरूप धारण करने वाले भगवन्! तुम्ही इस जगत् के सदसत् जितने पदार्थ हैं, सबके विनाश के कारण हो। अनन्त रूप धारण कर उन सबों के तुम्ही करने वाले भी हो॥ १०॥

तेभ्यः स्थूलैस्तैः पुराणैः प्रणीतो भूतं भव्यं चैवमुद्भूतिभाजाम्।
भावे भावे भावितं त्वां युनक्ति युक्तं युक्तं व्यक्तिभावान्निरस्य॥ ११॥

संसार में जो कुछ भी सूक्ष्म तथा उनकी अपेक्षा स्थूल पदार्थ विद्यमान हैं, तथा अन्य जो कुछ पदार्थ उन स्थूल पदार्थों को भी आवृत (ढकने वाले) करने वाले हैं, तुम उन सबों से स्थूल हो। सनातन हो। भूत भव्य— सब कुछ हो। तुम अपने सङ्कल्प द्वारा प्रत्येक पदार्थों में अनुप्रविष्ट होकर व्यक्त होते हो, एवं उन उन पदार्थों से निर्गत भी होते हो॥ ११॥

इत्थं देवो भक्तिभाजां शरण्यस्त्राता गोप्ता नो भवानन्तमूर्तिः॥ १२॥

श्रीमत्स्यपुराणे शक्रादिकृता ब्रह्मस्तुतिः सम्पूर्णा॥

(१५४ अध्याय श्लोक सं० ५ तः १५ पर्यन्ता)

इस प्रकार सभी व्यक्त भावों का निरसन करके भी तुम स्थित हो। तुम अनन्त मूर्ति धारण करने वाले हो, तुम्हारा स्वभाव ही यह है। तुम अपने भक्तजनों को शरण देने वाले, त्राण करने वाले तथा रक्षक सब कुछ हो"॥ १२॥

श्री मत्स्य पुराण में वर्णित शक्रादि कृत ब्रह्मा की स्तुति सम्पूर्ण॥



हिरण्यकशिपुकृतं ब्रह्मणः स्तोत्रम्

हिरण्यकशिपु०

कल्पान्ते कालसृष्टेन योऽन्धेन तमसाऽऽवृतम्।
अभिव्यनग् जगदिदं स्वयञ्ज्योतिः स्वरोचिषा॥ १॥

हिरण्यकशिपु—

कल्प के अन्त में यह सारी सृष्टि काल द्वारा प्रेरित तमोगुण से, गहन अन्धकार से आच्छादित हो गयी थी। उस समय स्वयंप्रकाश-स्वरूप आपने अपने तेज से पुनः इसे प्रकट किया॥ १॥

आत्मना त्रिवृता चेदं सृजत्यवति लुम्पति।
रजःसत्त्वतमोधाम्ने पराय महते नमः॥ २॥

आप ही अपने त्रिगुणमय रूप से इसकी रचना, रक्षा और संहार करते हैं। आप रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण के आश्रय हैं। आप ही सबसे पर (उत्कृष्ट) और महान् हैं। आपको मैं नमस्कार करता हूँ॥ २॥

नमः आद्याय बीजाय ज्ञानविज्ञानमूर्तये।
प्राणेन्द्रियमनोबुद्धिविकारैर्व्यक्तिमीयुषे॥ ३॥

आप ही जगत् के मूल कारण हैं। ज्ञान और विज्ञान आपकी मूर्ति हैं। प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदि विकारों के द्वारा आपने स्वयं को प्रकट किया है॥ ३॥

त्वमीशिषे जगतस्तस्थुषश्च
प्राणेन मुख्येन पतिः प्रजानाम्।
चित्तस्य चित्तेर्मनइन्द्रियाणां
पतिर्महान् भूतगुणाशयेशः॥ ४॥

आप मुख्यप्राण सूत्रात्मा के रूप से चराचर जगत् को अपने नियन्त्रण में रखते हैं। आप ही प्रजा के रक्षक भी हैं। भगवन्! चित्त,

चेतना, मन और इन्द्रियों के स्वामी आप ही हैं। पञ्चभूत, शब्दादि विषय और उनके संस्कारों के रचयिता भी महत्तत्त्व के रूप में आप ही हैं॥ ४॥

त्वं सप्ततन्तून् वितनोषि तन्वा
त्रय्या चातुर्होत्रकविद्यया च।
त्वमेक आत्माऽऽत्मवतामनादि-
रनन्तपारः कविरन्तरात्मा॥ ५॥

जो वेद, होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा और उद्गाता— इन ऋत्विजों से होने वाले यज्ञ का प्रतिपादन करते हैं, वे आपके ही शरीर हैं। उन्हीं के द्वारा अग्निष्टोम आदि सात यज्ञों का आप विस्तार करते हैं। आप ही सम्पूर्ण प्राणियों के आत्मा है; क्योंकि आप अनादि, अनन्त, अपार, सर्वज्ञ और अन्तर्यामी हैं॥ ५॥

त्वमेव कालोऽनिमिषो जनाना-
मायुर्लवाद्यवयवैः क्षिणोषि।
कूटस्थ आत्मा परमेष्ठ्यजो महां-
स्त्वं जीवलोकस्य च जीव आत्मा॥ ६॥

आप ही काल हैं। आप प्रतिक्षण सावधान रहकर अपने क्षण, लव आदि विभागों के द्वारा लोगों की आयु क्षीण करते रहते हैं। फिर भी आप निर्विकार हैं; क्योंकि आप ज्ञानस्वरूप, परमेश्वर, अजन्मा महान् और सम्पूर्ण जीवों के जीवनदाता अन्तरात्मा हैं॥ ६॥

त्वत्तः परं नापरमस्त्यनेज-
देजच्च किञ्चिद् व्यतिरिक्तमस्ति।
विद्याः कलास्ते तनवश्च सर्वा
हिरण्यगर्भोऽसि बृहत्त्रिपृष्ठः॥ ७॥

प्रभो! कार्य कारण, चल और अचल ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो आपसे भिन्न हो। समस्त विद्या और कलाएँ आपके शरीर हैं। आप त्रिगुणमयी माया से अतीत स्वयं ब्रह्म हैं। यह स्वर्णमय ब्रह्माण्ड आप के गर्भ में स्थित है। आप इसे अपने में से ही प्रकट करते हैं॥ ७॥

व्यक्तं विभो स्थूलमिदं शरीरं
येनेन्द्रियप्राणमनोगुणाँस्त्वम्।
भुङ्क्षे स्थितो धामनि पारमेष्ठ्ये
अव्यक्त आत्मा पुरुषः पुराणः ॥ ८ ॥

प्रभो! यह व्यक्त ब्रह्माण्ड आपका स्थूल शरीर है। इसके माध्यम से आप इन्द्रिय, प्राण और मन के विषयों का उपभोग करते हैं। किन्तु उस समय भी आप अपने परम ऐश्वर्यमय स्वरूप में ही स्थित रहते हैं। वस्तुतः आप पुराणपुरुष, स्थूल सूक्ष्म से परे ब्रह्मस्वरूप ही हैं ॥ ८ ॥

अनन्ताव्यक्तरूपेण येनेदमखिलं ततम्।
चिदचिच्छक्तियुक्ताय तस्मै भगवते नमः ॥ ९ ॥

श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां सप्तमे स्कन्धे
हिरण्यकशिपुकृतं ब्रह्मणः स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

आप अपने अनन्त और अव्यक्त स्वरूप से सारे जगत् में व्याप्त हैं। चेतन और अचेतन— ये दोनों आपकी ही शक्तियाँ हैं। भगवन्! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ९ ॥

श्रीमद्भागवत महापुराण के सप्तम स्कन्ध में हिरण्यकशिपुकृत
ब्रह्मा का स्तोत्र सम्पूर्ण हुआ ॥



नारदकृता ब्रह्मस्तुतिः

नारद०

सहस्रशीर्षापुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
सर्वव्यापी भुवः स्पर्शादध्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम्॥ १॥

नारद—जिस (देवता) के हजारों मस्तक हैं, जिसके हजारों नेत्र हैं, एवं जिसके हजारों पैर (पाद) हैं— ऐसा एक पुरुष (ईश्वर) हैं। वह भूमि को चारों तरफ से आवृत कर रहा है। तथा वह दश अङ्गुल रूप इस छोटी सी सृष्टि को व्याप्त कर इससे बाहर भी स्थित है॥ १॥

यद् भूतं यच्च वै भाव्यं सर्वमेव भवान्यतः।
ततो विश्वमिदं तात त्वत्तो भूतं भविष्यति॥ २॥

इस संसार में जो कुछ भी हुआ है, या जो कुछ भी होगा— वह सब वस्तुतः आप ही हैं; अतः हे तात! यह समस्त विश्व, भले ही जो हो चुका हो या आगे जो होने वाला हो वह, सब कुछ आप से ही है॥ २॥

त्वत्तो यज्ञः सर्वहुतः पृषदाज्यं पशुर्द्विधा।
ऋचस्त्वत्तोऽथ सामानि त्वत्त एवाभिजज्ञिरे॥ ३॥

आप से ही यह सर्वहविर्भोजी यज्ञ दधिमिश्रित घृत तथा द्विविध पशु प्रादुर्भूत हुए। ऋग्वेद तथा सामवेद भी आप से ही प्राप्त हुए॥ ३॥

त्वत्तो यज्ञास्त्वजायन्त त्वत्तोऽश्वाश्चैव दन्तिनः।
गावस्त्वत्तः समुद्भूताः त्वत्तो जाता वयोमृगाः॥ ४॥

आप से ही यज्ञ तथा अश्व एवं हाथी उद्भूत हुए। गौएँ तथा मृग भी आप से ही उद्भूत हुए॥ ४॥

त्वन्मुखाद् ब्राह्मणा जातास्त्वत्तः क्षत्रमजायत।
वैश्यास्तवोरुजाःशूद्रास्तव पद्भ्यां समुद्गताः॥ ५॥

ब्राह्मणों की उत्पत्ति आप के मुख से हुई। क्षत्रियों की भी उत्पत्ति आप से ही हुई। आप की जङ्घाओं से वैश्यों की तथा पैरों से शूद्र जाति की उत्पत्ति हुई॥ ५॥

अक्ष्णोः सूर्योऽनिलः श्रोत्राच्चन्द्रमा मनसस्तव।
प्राणोऽन्तःसुषिराज्जातो मुखादग्निरजायत॥ ६॥

आपके नेत्रों से सूर्य की, श्रोत्र से वायु की तथा मन से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई। अपके शरीरस्थ आभ्यन्तर रिक्त स्थानों से प्राणों की तथा आपके मुख से अग्नि की उत्पत्ति हुई॥ ६॥

नाभितो गगनं द्यौश्च शिरसः समवर्तत।
दिशः श्रोत्रात् क्षितिः पद्भ्यां त्वत्तः सर्वमभूदिदम्॥ ७॥

आपकी नाभि से आकाश की तथा शिर से ऊर्ध्व लोक की श्रोत्र से दिशाओं की एवं आपके चरणों से अवशिष्ट सृष्टि की रचना हुई॥ ७॥

न्यग्रोधः सुमहानल्पे यथा बीजे व्यवस्थितः।
ससर्ज विश्वमखिलं बीजभूते तथा त्वयि॥ ८॥

जैसे महान् वट वृक्ष छोंटे से बीज के अन्तर्भूत (स्थित) रहता है, उसी तरह यह समग्र सृष्टि आप में अन्तर्भूत रहती है॥ ८॥

बीजाङ्कुरसमुद्भूतो न्यग्रोधः समुपस्थितः।
विस्तारं च यथा याति त्वत्तः सृष्टौ तथा जगत्॥ ९॥

जैसे उस छोटे से बीज से अङ्कुरित होकर एक दिन विशाल वट वृक्ष बन जाता है, उसी तरह आपकी बनायी सृष्टि में यह विशाल जगत् अधिक से अधिक विस्तार प्राप्त कर रहा है॥ ९॥

यथा हि कदली नान्या त्वक्पत्रेभ्योऽभिदृश्यते।
एवं विश्वमिदं नान्यत् त्वत्स्थमीश्वर दृश्यते॥ १०॥

हे ईश्वर! जैसे केले का वृक्ष अपने पत्रों से भिन्न नहीं होता, उसी तरह यह समग्र संसार आप में ही स्थित दिखायी देता है॥ १०॥

ह्लादिनी त्वयि शक्तिः सा त्वय्येका सहभाविनी।
ह्लादतापकरा मिश्रा त्वयि नो गुणवर्जिते॥ ११॥

आप की वह (परा) शक्ति आप में एकीकृत होकर आपके साथ साथ रहती है, अतः एव वह प्रसन्नतादायक लगती है। परन्तु

वही शक्ति जब आप से पृथक् होकर निर्गुण रूप से अवस्थित होती है तो सामान्य प्राणियों के लिये मिश्रित रूप से हर्ष एवं विषाद का कारण बन जाती है ॥ ११ ॥

पृथग्भूतैकभूताय सर्वभूताय ते नमः।
व्यक्तं प्रधानं पुरुषो विराट् सम्राट् तथा भवान्॥ १२ ॥

जब आप उससे पृथक् होकर एकमात्र रूप में सब प्राणियों में व्यापक रूप से विराजमान रहते हैं, तब आप 'व्यक्त', 'प्रधान', 'पुरुष', 'विराट्' या 'सम्राट्' कहलाते हैं। आपके उस रूप को प्रणाम है ॥ १२ ॥

सर्वस्मिन् सर्वभूतस्त्वं सर्वः सर्वस्वरूपधृक्।
सर्वं त्वत्तः समुद्भूतं नमः सर्वात्मने ततः ॥ १३ ॥

आप समस्त प्राणियों में, समग्र जगत् में, सभी रूपों में सर्वतो-भावेन व्याप्त हैं। यह सब कुछ दृश्यमान जगत् आप से ही उद्भूत है। अतः हे सर्वात्मन्! आप को प्रणाम है ॥ १३ ॥

सर्वात्मकोऽसि सर्वेश! सर्वभूतस्थितो यतः।
कथयामि ततः किं ते सर्वं वेत्सि हृदिस्थितम्॥ १४ ॥

आप सब प्राणियों में आत्मा के रूप में विद्यमान हैं; क्योंकि आप सर्वव्यापक हैं। अतः आप सबके हृदय में रहते हुए सबकेभावों को जानते ही हैं तो मैं अपने विषय में अपनी वाणी से क्या कहूँ॥ १४ ॥

यो मे मनोरथो देवः सफलः स त्वया कृतः।
तप्तं सुतप्तं सफलं यद् दृष्टोऽसि जगत्पते॥ १५ ॥

श्री पाद्मे पुराणे सृष्टिखण्डे नारदकृत ब्रह्म स्तुतिः सम्पूर्णा॥

हे जगत्स्वामिन्! मेरे मन की जो कामना थी वह भी आपने सफल (पूर्ण) कर दी। मुझे तपस्या का फल मिल गया। आपके दर्शन से मैं अपने को कृतकृत्य मानता हूँ॥ १५ ॥

पद्मपुराण, सृष्टि खंण्ड में वर्णित नारदकृत
ब्रह्मस्तुति सम्पूर्ण हुई।



महर्षिव्यासकृता ब्रह्मस्तुतिः

प्रपद्ये देवमीशानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम्।
महादेवं महात्मानं सर्वस्य जगतः पतिम्॥ १॥

हे देव! आप सबके स्वामी हैं, आप शाश्वत (अविनाशी) ध्रुव (स्थिर) एवं अव्यय (अनश्वर) हैं। आप देवाधिदेव हैं, आप महान् आत्मा हैं, तथा समस्त जगत् के पति हैं, अत: आपको प्रणाम है॥ १॥

ब्रह्माणं लोकर्तारं सर्वज्ञमपराजितम्।
प्रभुं भूतभविष्यस्य साम्प्रतस्य च सत्पतिम्॥ २॥

आप तीनों लोकों के स्रष्टा, सर्वज्ञ, किसी से भी अपराजेय, भूत, भविष्य एवं वर्तमान के अधिपति हैं, ऐसे आप ब्रह्मा को प्रणाम है॥ २॥

ज्ञानमप्रतिमं यस्य वैराग्यं च जगत्पतेः।
ऐश्वर्यं चैव धर्मश्च सहसिद्धिचतुष्टयः॥ ३॥

जिसका ज्ञान अतुलनीय (सर्वश्रेष्ठ) है, जिस जगत्पति का वैराग्य भी अनुपम है। इसी तरह जिसके ऐश्वर्य और धर्माचरण की समानता नहीं की जा सकती। चतुर्वर्ग की सिद्धियाँ जिसके सम्मुख हाथ जोड़े खड़ी हैं— ऐसे ब्रह्मा जी को मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३॥

य इमान् पश्यते भावान् नित्यं सदसदात्मकान्।
आविशन्ति पुनस्तं वै क्रियाभावार्थमीश्वरम्॥ ४॥

जो इन सत् एवं असत् भावों को नित्य देखता रहता है, फिर भी ये भाव सृष्टिरचना के समय (व्यहारकाल में) जिसमें आविष्ट होते रहते हैं, उस देवाधिदेव को मैं प्रणाम करता हूँ॥ ४॥

लोककृल्लोकतत्त्वज्ञो योगमास्थाय तत्त्ववित्।
असृजत् सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च॥ ५॥

जो लोक का स्रष्टा है, अत: लोक की वास्तविकता को जानता है, जिसने योगसाधन द्वारा तत्त्व का साक्षात्कार कर लिया है। एतदनन्तर

ही जिसने सभी अचल चल (स्थावर जङ्गम) प्राणियों की सृष्टि की है। ऐसे ब्रह्मा जी को मैं प्रणाम करता हूँ॥ ५ ॥

तमजं विश्वकर्माणं चित्पतिं लोकसाक्षिणम्।
पुराणाख्यानजिज्ञासुर्व्रजामि शरणं प्रभुम्॥ ६ ॥

मैं ऐसे अविनाशी, विश्वस्रष्टा, चित्स्वामी, लोकद्रष्टा प्रभु की शरण में इसलिये आया हूँ कि आप से मुझे पुराणों के दुर्लभ आख्यान सुनने को मिलें॥ ६ ॥

वायुपुराणान्तर्गत महर्षिव्यासकृत ब्रह्मस्तुति सम्पूर्ण॥



स्वयम्भूस्तोत्रम्

जगत्कृते स्वयम्भुवमनादिलीनमव्ययम्।
तनोर्विपज्जरात्मकृत्स्वयम्भुवं नमाम्यहम्॥ १॥

जो जगत् के लिये आदिपुरुष है, स्वयं अनादि है, अविनाशी है। जो प्राणियों को शरीरों के लिये विपत्ति (दु:ख) एवं जरा (जीर्णता) का कर्त्ता है ऐसे स्वयम्भु विधाता को मेरा प्रणाम है॥ १॥

सहस्रपत्रपङ्कजं लसत्सुकर्णिकोद्भवम्।
समस्तकामनाप्रदं स्वयम्भुवं नमाम्यहम्॥ २॥

सहस्रदल कमल की कर्णिकाओं से उत्पन्न, भक्तों की सभी कामनाओं के पूरक भगवान् ब्रह्मा को मैं प्रणाम करता हूँ॥ २॥

सहस्रभानुरञ्जनं नियुतचन्द्रनन्दनम्।
सुरादिलोकवन्दनं स्वयम्भुवं नमाम्यहम्॥ ३॥

हजारों सूर्यों की कान्ति वाले तथा लाखों चन्द्रमाओं की आभा वाले एवं देवलोक आदि सभी लोकों से वन्दित भगवान् ब्रह्मा (स्वयम्भु) को मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३॥

त्वमेव राजसे गुणैर्भुवि स्थितो विराजसे।
त्रिधातुकं विभावसे स्वयम्भुवं नमाम्यहम्॥ ४॥

सत्त्व, रजस्, तमस्— इन तीनों गुणों से आप युक्त हैं। इन्हीं के सहारे से आप विश्व में शोभित होते हैं। आप त्रैधातुक (वात, कफ, पित्तयुक्त) हैं, अत: हे ब्रह्मन्! आपको प्रणाम है॥ ४॥

अयं क इत्ययं हृदा मीमांसितुं न शक्तवान्।
प्रघासमात्रमीक्षितः स्वयम्भुवं नमाम्यहम्॥ ५॥

आप के विषय में— 'आप वास्तव में क्या हैं?'— इस पर बहुत अधिक विचार करने पर भी मैं अभी तक कुछ भी नहीं समझ पाया। मैं तो जीवनपर्यन्त अपनी उदरपूर्ति में ही लगा रहा। अतः विवश होकर हे विधातः! आपको प्रणाम करता हूँ॥ ५॥

पठन्ति ये नरा मुदा स्वयम्भुवः स्तुतिं सदा।
त्रिवर्गसिद्धिमाप्य ते लभन्ति मुक्तिमेव ताम्॥ ६॥

श्रीबृहत्स्वयम्भुपुराणोद्धृतं शिखिनिर्मितं
स्वयम्भूस्तोत्रं समाप्तम्॥

जो भक्त प्रसन्न मन से स्वयम्भू के इस स्तोत्र का नित्य पाठ करते हैं, वे धर्म, अर्थ, काम— इस त्रिवर्ग की प्राप्ति के साथ साथ मोक्ष भी अधिगत कर लेते हैं॥ ६॥

बृहत्स्वयम्भुपुराण में उद्धृत शिखिनिर्मित
स्वयम्भूस्तोत्र समाप्त॥



स्वयम्भूस्तवः

नमस्ते विश्वरूपाय ज्योतीरूपाय ते नमः।
नमः स्वयम्भुवे नित्यं जगदुद्धारहेतवे॥ १॥

हे विश्वरूप! हे ज्योतिःस्वरूप! आपको प्रणाम है। हे स्वयम्भो! आप इस जगत् के एकमात्र उद्धारक हैं, अतः आपको प्रणाम है॥ १॥

त्वं बुद्धस्त्वं च धर्मो दशबलतनयस्त्वं तथा बोधिसत्त्व-
स्त्वं भिक्षुः श्रावकस्त्वं कुलिशवरधरस्त्वं तथा धर्मधातुः।
त्वं ब्रह्मा त्वं च विष्णुः प्रमथगणपतिस्त्वं महेन्द्रो यमस्त्वं
त्वं पाशी त्वं धनेशस्त्वमनलपवनौ नैर्ऋतस्त्वं महेशः॥ २॥

हे भगवन्! आप ही बुद्ध हैं, आप ही तदुपदिष्ट धर्मरूप हैं, आप बुद्धपुत्र (बुद्धशिष्य) हैं, आप बोधिसत्त्व हैं। आप ही भिक्षु हैं, आप ही श्रावक हैं, आप ही वज्रधारी (इन्द्र) हैं, आप ही धर्मधातु (बुद्धोपदेश) हैं। मैं तो आप को ही ब्रह्मा, विष्णु तथा शङ्कर, इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर मानता हूँ। मेरी दृष्टि में आप ही अग्नि तथा वायु हैं। आप ही निर्ऋति दिशा के अधिपति एवं देवाधिदेव हैं॥ २॥

भूताः प्रेताश्च तिर्यक् त्वममरदितिर्मानवास्त्वं वयं च
चातुर्योनिस्त्वमेव त्रिगुणवरतनुः पञ्चज्ञानैकमूर्तिः।
वर्णास्त्वं कालमासा दिनमपि रजनी पञ्चभूतास्त्वमेव
अन्नं रत्नं च सर्वं मतिरिति महती नः सदा त्वां नताः स्मः॥ ३॥

हमारी बुद्धि (समझ) से आप ही भूत, प्रेत, तिर्यग्योनिगत प्राणियों में व्याप्त हैं। आप ही देवता राक्षस एवं मानव रूपों में हैं। हम सब में भी आप का ही रूप है। चातुर्महाराजिकदेवों में भी आपका ही रूप है। आप त्रिगुणशरीरधारी हैं। आप पञ्चज्ञानों के समष्टि आकार हैं। आप ही वर्ण (अक्षर) हैं। आप ही काल एवं मास, दिन

एवं रात्रि, यहाँ तक कि पाँचों महाभूत आप ही हैं। भूमि से निकलने वाले सभी प्रकार के अन्न तथा खनिज पदार्थ हैं। अतः हम आपके सम्मुख सदा प्रणत हैं॥ ३॥

पञ्चज्ञानेन बुद्धान् सृजसि स्वयमथो बोधिसत्वांश्च पञ्च-
भूतानेतान् गुणांस्त्रीनजहरिगिरिशान् स्थावराञ्जङ्गमांश्च।
सर्वेषां चेतसि स्थो नटयसि सकलं सर्वतो रक्षकोऽसि
त्वं बीजं चाङ्कुरस्त्वं फलमपि विटपी सर्वदा त्वां नताः स्मः॥ ४॥

आप स्वयं पञ्चज्ञान के प्रभाव से बुद्धों की तथा बोधिसत्त्वों की सृष्टि करते हो, इसी तरह पञ्चभूतों की, तीन गुणों की, ब्रह्मा विष्णु, शङ्कर— तीन देवों की, स्थावर जङ्गम प्राणियों की सृष्टि आप ही करते हो। सभी प्राणियों के हृदय में विराजमान होकर उन्हें स्व स्व प्रारब्धानुसार आप ही नचाते हो। आप सबके प्रतिपालक हो। आप ही इस समग्र सृष्टि के बीज भी हो अङ्कुर भी; आप ही संसार, वृक्ष हो। आप ही इसके फल हो। अतः हम आपको सर्वदा प्रणाम करते हैं॥ ४॥

श्रेष्ठं क्षेत्रं त्वमस्मिन् प्रभवसि भगवान् सर्वतः सर्वदेवान्
ग्रामाँस्तीर्थानि देशान् नृपसहितनरान् नैगमांश्चापि सर्वान्।
द्वीपेष्वन्येष्वपि त्वं विभजसि सकलं ज्योतिषां संविभागम्
बीजीभूतैकदीपोऽस्यखिलमपि जगद्व्यापकस्त्वां नताः स्मः॥ ५॥

आप ही इस समस्त सृष्टि के उचित क्षेत्र हैं। सामर्थ्यशाली आप ही सर्वत्र इन सब देवों को, ग्रामों को, तीर्थों को, देशों को, राजा सहित प्रजा को, सभी निगम-जनपदों की रचना करते हैं। इसी तरह आप अन्य द्वीपों में भी समग्र तारागण एवं नक्षत्रसमूहों की विभागशः रचना करते हैं। अतः आप इस समस्त संसार के एकमात्र बीज (आदिकारण) हैं, प्रकाशस्तम्भ हैं। आप सर्वजगत् में व्याप्त हैं, अतः आपको हमारा सादर प्रणाम है॥ ५॥

ज्योतिस्त्वदीयं परितो विसारि सितारुणश्यामकपीतरक्तम्।
दृष्टं ततः सर्वमिदं भवन्तं मन्यामहे त्वां प्रणताः स्म नित्यम्॥ ६॥

आप का ही प्रकाश सब तरफ फैला हुआ है। कहीं वह श्वेत है तो कहीं अरुण या फिर काला या पीला। इन सबकी रचना में भी हम आप को ही कारण मानते हैं। अतः हम आपको नित्य प्रणाम करते हैं॥ ६॥

नुतिं महाराजकृतां ये पठिष्यन्ति मानवाः।
चक्रवर्तिपदं प्राप्य ते हि मुक्तिमवाप्नुयुः॥ ७॥

श्रीचातुर्महाराजकृतं स्वयम्भूस्तवं समाप्तम्॥

इस तरह चातुर्महाराज देव (दिक्पाल) द्वारा इस स्तोत्र का जो श्रद्धालु पुरुष नित्य पाठ करेंगे वे पहले चक्रवर्ति-पद प्राप्त कर (समग्र ऐहिक सुख भोगकर) अन्त में इस भवबन्धन से मुक्ति (मोक्ष) अवश्य ही प्राप्त कर लेंगे॥ ७॥

चातुर्महाराजकृत स्वयम्भूस्तव समाप्त॥



पद्मपुराणत:—

रुद्रप्रोक्तं ब्रह्मकवचम्

नारायणादनन्तरं रुद्रो भक्त्या विरञ्चिनम्।
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा ब्रह्माणं कमलोद्भवम्॥ १॥

भगवान् विष्णु द्वारा ब्रह्मा की स्तुति करने के बाद, भगवान् शङ्कर ने भी भक्तिपूर्वक आदिदेव, पद्मयोनि ब्रह्मा की इस प्रकार स्तुति आरम्भ की॥ १॥

रुद्र०

नमः कमलपत्राक्ष नमस्ते पद्मजन्मने।
नमः सुरासुरगुरो कारिणे परमात्मने॥ २॥

रुद्र—हे कमलपत्राक्ष! हे पद्मयोने! हे देव-दानवगुरो! हे जगत्स्रष्टा! हे परमात्मन्! आपको प्रणाम है॥ २॥

नमस्ते सर्वदेवेश नमो वै मोहनाशन!
विष्णोर्नाभिस्थितवते कमलासनजन्मने॥ ३॥

हे समस्त देवताओं के स्वामिन्! हे मोह (अविद्या) नाशक! हे विष्णु की नाभि में पद्मासन पर विराजमान रहनेवाले! हे पद्मयोनि! आपको प्रणाम है॥ ३॥

नमो विद्रुमरक्ताङ्ग पाणिपल्लव शोभिने।
शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि त्राहि मां भवसंसृतेः॥ ४॥

हे विद्रुम (मूंगा) के समान लाल रंग से शोभित करकमलवाले ब्रह्मदेव! मैं आपका शरणागत हूँ। आप मुझे इस भवबन्धन से मुक्ति दिलाइये॥ ४॥

पूर्वं नीलाम्बुदाकारं कुड्मलं ते पितामह!
दृष्ट्वा रक्तमुखं भूयः पत्रकेशरसंयुतम्॥ ५॥

हे पितामह! पहले जो कमल का फूल कली के रूप में था,

वही आगे चलकर मनोहर पत्र एवं केशर से युक्त होकर रक्तवर्ण में नयनाभिराम हो गया॥ ५॥

पद्मं चानेकपत्रान्तमसङ्ख्यातनिरञ्जनम्।
तत्र त्वया स्थितेनैषा सृष्टिश्चैव प्रवर्तिता॥ ६॥

ऐसी अनेक पत्तियों वाले कमल पुष्प से उत्पन्न होकर तथा उसी पर विराजमान होकर आपने इस समस्त संसार की सृष्टि की है॥ ६॥

त्वां मुक्त्वा नान्यतस्त्राणं जगद्वन्द्य नमोऽस्तु ते॥ ७॥

अतः हे जगत्पूज्य! अब आपको छोड़कर मुझे अन्य किसी के सहारे इस दुःख से मुक्ति नहीं मिलने वाली है॥ ७॥

ब्रह्मा वै पातु मे पादौ जङ्घे वै कमलासनः।
विरञ्चिर्मे कटिं पातु सृष्टिकृद् गुह्यमेव च॥ ८॥

ब्रह्मा के रूप में आप मेरे पैरों की रक्षा करें और कमलासन के रूप में मेरी जङ्घाओं की रक्षा करे। आपका 'विरञ्चि' नाम मेरी कटि की रक्षा करे तथा 'सृष्टिकर्ता' नाम मेरे गुह्य अङ्ग की रक्षा करे॥ ८॥

नाभिं पद्मनिभः पातु जठरं चतुराननः।
उरस्तु विश्वसृक् पातु हृदयं पातु पद्मजः॥ ९॥

इसी तरह आपका 'पद्मनिभ' नाम मेरी नाभि की रक्षा करे। और आप 'चतुरानन' नाम के प्रभाव से मेरे उदर की रक्षा करे। आपका 'विश्वसृक्' नाम मेरी छाती की रक्षा करे और 'पद्मज' नाम मेरे हृदय की॥ ९॥

सावित्रीपतिर्मे कण्ठं हृषीकेशो मुखं मम।
पद्मवर्णश्च नयने परमात्मा शिरो मम॥ १०॥

'सावित्रीपति' मेरे कण्ठ की तथा आपका 'हृषीकेश' नाम मेरे मुख की रक्षा करे। आपका 'पद्मवर्ण' नाम मेरे नेत्रों की रक्षा करे और 'परमात्मा' नाम से आप मेरे शिर की रक्षा करें॥ १०॥

एवं न्यस्य गुरोर्नाम शङ्करो नाम शङ्करः।

इस तरह गुरु (ब्रह्मा) का नाम ले लेकर भगवान् शङ्कर ने अपने समग्र शरीर के कल्याण की याचना की।

नमस्ते भगवन् ब्रह्मन्नित्युक्त्वा विरराम ह॥ ११ ॥

और अन्त में वे (शङ्कर) 'हे भगवन्! आपको प्रणाम है'— यह कहकर चुप हो गये॥ ११ ॥

पद्मपुराण के अन्तर्गत रूद्रप्रोक्त ब्रह्मकवच सम्पूर्ण॥



श्रीरामकृतं ब्रह्मशतनामस्तोत्रम्

राम०

नमामि लोककर्तारं प्रजापतिं सुरार्चितम्।
देवनाथं लोकनाथं प्रजानाथं जगत्पतिम्॥ १॥

श्रीरामचन्द्र— हे लोक का निर्माण करने वाले, प्रजापति! देववन्दित! देवनाथ! लोकनाथ! प्रजानाथ! एवं जगत् के स्वामिन्! मैं आपको प्रणाम करता हूँ॥ १॥

नमस्ते देव देवेश सुरासुरनमस्कृत!
भूतभव्यभवन्नाथ हरिपिङ्गललोचन॥ २॥

हे देवदेवेश! हे देवों एवं दानवों द्वारा पूजित! हे भूत भविष्यत् एवं वर्तमान के स्वामिन्! हे हरित एवं पिङ्गलनेत्र! आपको प्रणाम है॥ २॥

बालस्त्वं वृद्धरूपश्च मृगचर्मासनाम्बरः।
तारणश्चासि देवस्त्वं त्रैलोक्यप्रभुरीश्वरः॥ ३॥

आप बालक भी हैं और वृद्ध भी। आप मृगचर्म के आसन पर विराजमान रहते हैं तथा उसी चर्म को वस्त्ररूप में धारण भी करते हैं। आप भक्तजन को भवसागर से तारने वाले हैं। आप त्रिलोकी के स्वामी तथा देवाधिदेव तथा ईश्वर हैं॥ ३॥

हिरण्यगर्भ पद्मगर्भ वेदगर्भ स्मृतिप्रदः।
महासिद्धो महापद्मी महादण्डी च मेखली॥ ४॥

आप ही हिरण्यगर्भ, पद्मगर्भ, वेदगर्भ एवं स्मृतिप्रदाता हैं। आप महासिद्ध, महापद्मी, महादण्डी एवं मेखली भी कहलाते हैं॥४॥

कालश्च कालरूपी च नीलग्रीवो विदाम्वरः।
वेदकर्ताऽर्भको नित्यः पशूनाम्पतिरव्ययः॥ ५॥

आप काल, कालरूपी, नीलग्रीवा वाले, ज्ञानियों में श्रेष्ठ, वेदकर्ता, अर्भक, नित्य, पशुपति एवं अव्यय भी कहलाते हैं॥ ५॥

दर्भपाणिर्हंसकेतुः कर्ता हर्ता हरो हरिः।
जटी मुण्डी शिखी दण्डी लगुडी च महायशाः॥ ६॥

आप दर्भपाणि, हंसकेतु, कर्ता, हर्ता, हर तथा हरि कहलाते हैं और जटी, मुण्डी, शिखी, दण्डी, लगुड़ी और महायशा भी आपको ही कहते हैं॥ ६॥

भूतेश्वरः सुराध्यक्षः सर्वात्मा सर्वभावनः।
सर्वगः सर्वहारी च स्त्रष्टा च गुरुरव्ययः॥ ७॥

आप को भक्तजन भूतेश्वर, सुराध्यक्ष, सर्वात्मा एवं सर्वभावन भी कहते हैं। इसी तरह, सर्वत्रगति, सर्वहारी, स्त्रष्टा, ग़ुरु एवं अव्यय आप को ही कहते हैं॥ ७॥

कमण्डलुधरो देवः स्त्रुक्स्त्रुवादिधरस्तथा।
हवनीयोऽर्चनीयश्च ॐकारो ज्येष्ठसामगः॥ ८॥

आप कमण्डलुधारी, देवाधिदेव, स्त्रुग्धर तथा स्त्रुवाधर भी कहलाते हैं। आप का ही नाम हवनीय, अर्चनीय, ॐकार तथा ज्येष्ठ सामग है॥ ८॥

मृत्युश्चैवामृतश्चैव पारियात्रश्च सुव्रतः।
ब्रह्मचारिव्रतधरो गुहावासी सुपङ्कजः॥ ९॥

मृत्यु एवं अमृत आपके ही नाम हैं। तथा पारियात्र तथा सुव्रत आपके ही नाम हैं। आप ब्रह्मचर्यव्रत धारण करने वाले हैं। और गुहावासी एवं पङ्कज भी कहलाते हैं॥ ९॥

अमरो दर्शनीयश्च बालसूर्यनिभस्तथा।
दक्षिणे वामतश्चापि पत्नीभ्यामुपसेवितः॥ १०॥

आप अमर हैं, दर्शनीय हैं, बाल सूर्य के समान हैं। आप दक्षिण एवं वाम भाग में दो पत्नियों से सेवित हैं॥ १०॥

भिक्षुश्च भिक्षुरूपश्च त्रिजटी लब्धनिशचयः।
चित्तवृत्तिकरः कामो मधुर्मधुकरस्तथा॥ ११॥

आप भिक्षु हैं, भिक्षुरूप हैं, त्रिजटी हैं तथा लब्धनिश्चय भी कहलाते हैं। आप चित्तवृत्तिकर हैं, कामरूप हैं। मधु एवं मधुकर भी आपको कहते हैं॥ ११॥

वानप्रस्थो वनगत आश्रमी पूजितस्तथा।
जगद्धाता च कर्ता च पुरुषः शाश्वतो ध्रुवः ॥ १२ ॥

आप वानप्रस्थ हैं और वनगत भी। आपको भक्तजन आश्रमी एवं पूजित भी कहते हैं। आप जगद्धाता, कर्ता, पुरुष, शाश्वत एवं ध्रुव भी कहलाते हैं ॥ १२ ॥

धर्माध्यक्षो विरूपाक्षस्त्रिधर्मो भूतभावनः।
त्रिवेदो बहुरूपश्च सूर्यायुतसमप्रभः ॥ १३ ॥

आप धर्माध्यक्ष, विरूपाक्ष, त्रिधर्म, भूतभावन, त्रिवेद, बहुरूप एवं दश हजार सूर्यों की आभा वाले हैं ॥ १३ ॥

मोहको बन्धकश्चैव दानवानां विशेषतः।
देवदेवश्च पद्माङ्कस्त्रिनेत्रोऽब्जजट्स्तथा ॥ १४ ॥

आप मोहक हैं, बन्धक हैं, विशेषत दानवों के। आप देवाधिदेव हैं, पद्माङ्क हैं, त्रिनेत्र एवं पद्मयोनि भी कहलाते हैं ॥ १४ ॥

हरिश्मश्रुर्धनुर्धारी भीमो धर्मपराक्रमः।
एवं स्तुतस्तु रामेण ब्रह्मा ब्रह्मविदाम्बरः ॥ १५ ॥

श्रीपाद्मे पुराणे सृष्टिखण्डे वर्णितं
ब्रह्मशतनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

आप हरितवर्ण की दाढ़ी-मूँछ वाले हैं। आप भयङ्कर धनुर्धारी हैं, धर्मपराक्रम भी हैं।''

इस तरह (इन नामों से) श्री रामचन्द्र जी ने ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ ब्रह्मा जी की स्तुति की ॥ १५ ॥

पद्मपुराण के सृष्टिखण्ड में ब्रह्मशतनामस्तोत्र सम्पूर्ण ॥



ब्रह्महृदयस्तोत्रम्

ब्रह्माणं हंससङ्घायुतशरणवदावाहनं देववक्त्रम्,
विद्यादानैकहेतुं तिमिचरनयनाग्नीन्दुफुल्लारविन्दम्।
वागीशं वाग्गतिस्थं मतिमतविमलं बालार्कं चारुवर्णम्,
डाकिन्यालिङ्गितं तं सुरनरवरदं भावयेन्मूलपद्मे॥ १॥

मैं, दश हजार श्रेष्ठ हंस जुते हुए रथ पर आरूढ़, देवता के मुख सदृश मुख वाले, विद्यादान के एकमात्र कारण, मछली की तरह सुन्दर आँखों वाले, अग्नि एवं चन्द्रमा की कान्तियुक्त एवं खिले कमल की तरह मुख वाले, वाणी के अधिपति, जिसके गुणगान में वाणी अपनी सीमा समझती हो, बुद्धिमानों में श्रेष्ठ, बाल सूर्य के समान अरुण आभा वाले, डाकिनी (स्वकीय पत्नी) द्वारा आलिङ्गित, देवों और मानवों को अभीप्सित वर देने वाले, नाभिमूल से निःसृत कमलपुष्प पर विराजमान देवाधिदेव ब्रह्मा जी का ध्यान करता हूँ॥१॥

ब्रह्मज्ञानं निदानं गुणनिधिनयनं कारणानन्दयानम्,
ब्रह्मणं ब्रह्मबीजं रजनिजयजनं यागकार्यनुरागम्।
शोकातीतं विनीतं नरजलवचनं सर्वविद्याविधिज्ञम्,
सारात् सारं तरुं तं सकलतिमिरहं हंसगं पूजयामि॥ २॥

जिसकी उत्पत्ति में ब्रह्मज्ञान ही कारण है, जो त्रिनेत्र या अष्टनेत्र कहलाता है, निरन्तर सात्त्विक आनन्द में रत, ब्रह्मज्ञान के बीजभूत, यज्ञ से प्रसन्न होने वाले, यज्ञ सम्बन्धी कार्यों में अनुराग रखने वाले, विगतशोक, विनययुक्त, जल की तरह आर्द्र वचन बोलने वाले, सभी विद्याओं की विधि-परम्परा के ज्ञाता, सार से भी उत्कृष्ट सार, संसारवृक्षभूत, समस्त अज्ञानान्धकार के नाशक, हंसाधिरूढ भगवान् ब्रह्मा की मैं अर्चना करता हूँ॥ २॥

एतत्सम्बन्धमार्गं नवनवदलगं वेदवेदाङ्गविज्ञम्,
मूलाम्भोजप्रकाशं तरुणरविशशिप्रोन्नताकारसारम्।

भावाख्यं भावसिद्धं जयजयदविधिं ध्यानगम्यं पुराणम्,
पाराख्यं पारणाय परजनजनितं ब्रह्मरूपं भजामि॥ ३॥

इससे सम्बद्ध मार्ग वाले, नये नये पद्मपत्रों में रुचि रखने वाले, वेद एवं वेदाङ्ग शास्त्रों के ज्ञाता, नाभिकमल से निःसृत आभा से प्रकाशित, बाल सूर्य एवं चन्द्रमा की कान्ति से शोभित शरीर वाले भाव ध्यान से प्राप्त होने वाले विजयप्रदात्री विधि के ज्ञाता, ध्यानैकगम्य, पुराणपुरुष, भवसागर से पार उतारने में समर्थ, किसी विशिष्ट योगिजन द्वारा ही प्रापणीय उस ब्रह्मरूप की मैं सेवा करता हूँ॥ ३॥

डाकिनीसहितं ब्रह्मध्यानं कृत्वा पठेत् स्तवम्।
पठनाद् धारणा न्मन्त्री योगिनां सङ्गतो भवेत्॥ ४॥

डाकिनी (ब्रह्मपत्नी) सहित ब्रह्मा जी का ध्यान करके जो इस स्तोत्र का पाठ करेगा, इसके पाठ या धारण करने से वह आराधक (मन्त्र जप करने वाला) योगियों की कोटि में पहुँच जाता है॥ ४॥

एतत् पठनमात्रेण महापातक नाशनम्॥ ५॥

इस स्तोत्र के पाठमात्र से पाँचों ब्रह्महत्यादि पातक भी नष्ट हो जाते हैं॥ ५॥

एकरूपं जगन्नाथं विशालनयनाम्बुजम्।
एवं ध्यात्वा पठेत् स्तोत्रं पठित्वा योगिराड् भवेत्॥ ६॥

श्रीरुद्रयामले उत्तरतन्त्रे सिद्धमन्त्रप्रकरणे त्रिंशे पटले वर्णितं ब्रह्महृदयस्तोत्रं समाप्तम्॥

वे देव एकरूप हैं, जगत् के स्वामी हैं, उनके विशाल नेत्र कमल पुष्प के समान शोभित हैं।

इस तरह ध्यान करते हुए इस स्तोत्र का पाठ करता हुआ भक्त 'योगिराट्' की स्थिति में पहुँच जाता है॥ ६॥

श्रीरुद्रयामलतन्त्र के उत्तरतन्त्र में सिद्धमन्त्रप्रकरण के तीसवें पटल में वर्णित ब्रह्महृदयस्तोत्र समाप्त॥



ब्रह्मणो माहात्म्यम्

ब्रह्मतत्त्वविमर्शः

लोमहर्षण०

तस्मै हिरण्यगर्भाय पुरुषायेश्वराय च।
अजाय प्रथमायैव विशिष्टाय प्रजात्मने।
ब्रह्मणे लोकतन्त्राय नमस्कृत्वा स्वयम्भुवे॥ १॥
महदाद्यं विशेषान्तं सवैरूप्यं सलक्षणम्।
पञ्चप्रमाणं षट्श्वेतं पुरुषाधिष्ठितं नुतम्।
असंशयात्प्रवक्ष्यामि भूतसर्गमनुत्तमम्॥ २॥

उस हिरण्यगर्भ पुरुषेश्वर, अज, प्रथम, विशिष्ट, प्रजारूप, लोकतन्त्र स्वयम्भू ब्रह्मा को नमस्कार करके महत् तत्त्व से लेकर विशेष पर्यन्त नाना रूपों और लक्षणों के साथ पाँच प्रमाणों तथा छह श्वेतों वाली, पुरुष से अधिष्ठित वन्दनीय अनुत्तम भूतसृष्टि को निस्सन्देह बताऊँगा॥ १-२॥

अव्यक्तकारणं यत्तु नित्यं सदसदात्मकम्।
प्रधानं प्रकृतिं चैव यमाहुस्तत्त्वचिन्तकाः॥ ३॥
गन्धवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम्।
अजातं ध्रुवमक्षय्यं नित्यं स्वात्मन्यवस्थितम्॥ ४॥
जगद्योनिं महद्भूतं परं ब्रह्म सनातनम्।
विग्रहं सर्वभूतानामव्यक्तमभवत् किल॥ ५॥
अनाद्यन्तमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवाव्ययम्।
असाम्प्रतमविज्ञेयं ब्रह्माग्रे समवर्तत।
तस्याऽऽत्मना सर्वमिदं व्याप्तमासीत्तमोमयम्॥ ६॥

अव्यक्त कारण जो सदा सत् असत् रूप में रहता है, जिसे तत्त्वचिन्तक जन प्रधान एवं प्रकृति कहते हैं तथा गन्ध, वर्ण और रस से शून्य, शब्द स्पर्श से रहित, अजात, ध्रुव, अक्षय्य, नित्य, अपने में

उपस्थित, जगत् का आदि कारण, महत् भूत, परब्रह्म, सनातन तथा समस्त भूतों के विग्रह (शरीर रूप) और अव्यक्त।

जो आदि अन्त से रहित, सूक्ष्म, त्रिगुणात्मक, सब की उत्पत्ति तथा प्रलय का स्थान, असाम्प्रत, अविज्ञेय ब्रह्मा पहले हुआ॥ ३-६॥

गुणसाम्ये तदा तस्मिन्गुणभावे तमोमये॥ ७॥
सर्गकाले प्रधानस्य क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्य वै।
गुणाभावाद्वाच्यमानो महान्प्रादुर्बभूव ह॥ ८॥

आत्मा से यह समस्त तमोमय जगत व्याप्त था। उस गुणों की साम्यावस्था, तमोमय वह केवल एक गुण-भाव वाले, सृष्टिकाल में क्षेत्रज्ञ के अधिष्ठान से गुणयुक्त, महान् नामक तत्त्व प्रकट हुआ॥ ७-८॥

सूक्ष्मेण महता सोऽथ अव्यक्तेन समावृतः।
सत्त्वोद्रिक्तो महानग्रे सत्त्वमात्रं प्रकाशकम्।
मनो महांश्च विज्ञेयो मनस्तत्कारणं स्मृतम्॥ ९॥
लिङ्गमात्रसमुत्पन्नः क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तु सः।
धर्मादीनां तु रूपाणि लोकतत्त्वार्थहेतवः।
महांस्तु सृष्टिं कुरुते नोद्यमानः सिसृक्षया॥ १०॥

जो पहले सूक्ष्म महत् अव्यक्त से आवृत था। पहले सत्त्वबहुल महान् प्रकट हुआ। सत्त्वमात्र प्रकाशरूप मन को ही महान् समझना चाहिये। उसका कारण भी मन ही कहलाता है। क्षेत्रज्ञ के अधिष्ठान से वह लिङ्गमात्र उत्पन्न हुआ। लोक के तत्त्वों के कारण धर्म आदि उसके रूप हैं। सृष्टि की इच्छा से प्रेरित होने पर महान् ही सृष्टि करता है॥ ९-१०॥

मनो महान्मतिब्रह्मापूर्बुद्धिः ख्यातिरीश्वरः।
प्रज्ञा चितिः स्मृतिः संविद्धिपुरं चोच्यते बुधैः॥ ११॥
मनुते सर्वभूतानां यस्माच्चेष्टाफलं विभुः।
सूक्ष्मत्वेन विवृद्धानां तेन तन्मन उच्यते॥ १२॥

उसी को पण्डित लोग मन, महान्, मति, ब्रह्मा,पू, बुद्धि, ख्याति, ईश्वर, प्रज्ञा, चिति, स्मृति, संविद् और विपुर कहते हैं। यह

विभु सूक्ष्मता से विबुद्ध समस्त भूतों की चेष्टा के फल का मनन कर लेता अर्थात् उनको समझ जाता है इसलिये इसको 'मन' कहते हैं॥ ११-१२॥

तत्त्वानामग्रजोयस्मान्महांश्च परिमाणतः।
शेषेभ्योऽपि गुणेभ्योऽसौ महानिति ततः स्मृत॥ १३॥

तत्त्वों में सब से प्रथम उत्पन्न होने, परिमाण में अथ च शेष गुणों से बड़ा होने के कारण इसको महान् कहते हैं॥ १३॥

बिभर्ति मानं मनुते विभागं मन्यतेऽपि च।
पुरुषोपभोगसम्बन्धात्तेन चासौ मतिः स्मृतः॥ १४॥

यह मान धारण करता है, जगत् तथा पुरुष के भोग के सम्बन्ध से विभाग को समझता है और जानता है इसलिये उसे 'मति' कहते हैं॥ १४॥

वृहत्त्वाद् बृंहणत्वाच्च भावानां सलिलाश्रयात्।
यस्माद् बृंहयते भावान्ब्रह्मा तेन निरुच्यते॥ १५॥

यह बृहत् होने के कारण सलिल के आश्रय से भावों को बढ़ाता है, इससे भावों की वृद्धि होती है। अतएव इसका नाम 'ब्रह्मा' है॥ १५॥

आपूरयित्वा यस्माच्च कृत्स्नान् देहाननुग्रहैः।
तत्त्वभावांश्च नियतांस्तेन पूरिति चोच्यते॥ १६॥

समस्त देहों तथा नियत तत्त्व भावों को अनुग्रह द्वारा पूरित करता है अतएव 'पू' कहलाता है॥ १६॥

बुध्यते पुरुषश्चात्र सर्वभावान् हिताहितान्।
यस्माद् बोधयते चैव तेन बुद्धिर्निरुच्यते॥ १७॥

इसी से पुरुष हित, अहित सारे भावों का बोध करता तथा कराता है अतएव इसकी 'बुद्धि' संज्ञा हुई॥ १७॥

ख्यातिः प्रत्युपभोगश्च यस्मात् संवर्तते ततः।
भोगस्य ज्ञाननिष्ठत्वात्तेन ख्यातिरिति स्मृतः॥ १८॥
ख्यायते तद्गुणैर्वाऽपि नामादिभिरनेकशः।
तस्माच्च महतः संज्ञा ख्यातिरित्यभिधीयते॥ १९॥

भोग के ज्ञाननिष्ठ होने के कारण इसी से ख्याति तथा प्रत्युपभोग होता है एवं अपने गुणों वाले अनेक नामों से इसकी ख्याति है अतएव महत् को 'ख्याति' कहते हैं॥ १८-१९॥

साक्षात्सर्वं विजानाति महात्मा तेन चेश्वरः।
तस्माज्ज्ञाता ग्रहाश्चैव प्रज्ञा तेन स उच्यते॥ २०॥
ज्ञानादीनि च रूपाणि क्रतुकर्मफलानि च।
चिनोति यस्माद्भोगार्थं तेनासौ चितिरुच्यते॥ २१॥
वर्तमानान्यतीतानि तथा चानागतान्यपि।
स्मरते सर्वकार्याणि तेनासौ स्मृतिरुच्यते॥ २२॥

ये महात्मा सबको साक्षात् जानते हैं अतएव इनका नाम 'ईश्वर' है। इसी से ग्रह भी उत्पन्न हुए इसलिये इसका नाम 'प्रज्ञा' है। ज्ञान आदि रूप तथा क्रतु, कर्मफल सब को भोग के लिये चयन करता है अतएव इसे 'चिति' कहते हैं।

वर्तमान अतीत तथा अनागत सभी कार्यों का स्मरण रखता है इसलिये इसका नाम 'स्मृति' है॥ २०-२२॥

कृत्स्नं च विन्दते ज्ञानं तस्मान्माहात्म्यमुच्यते।
तस्माद्विन्देर्विदश्चैव संविदित्यभिधीयते॥ २३॥
विद्यते स च सर्वस्मिन्सर्वं तस्मिंश्च विद्यते।
तस्मात्संविदिति प्रोक्तो महान्वैत्त बुद्धिमरैः॥ २४॥

समस्त ज्ञान को प्राप्त करता है अतएव इसकी संज्ञा 'माहात्म्य' है। विन्दन अर्थात् प्राप्त करने एवं वेदन अर्थात् ज्ञान के कारण तथा उसमें सब कुछ एवं यह सब में विद्यमान रहता है इसलिये भी विशाल बुद्धि वाले महान् को 'संविद्' कहते हैं। ज्ञाननिधि से इसे ज्ञानरूप होने के कारण 'ज्ञान' कहा है॥ २३-२४॥

ज्ञानात्तु ज्ञानमित्याह भगवाञ्ज्ञानसन्निधिः।
द्वन्द्वानां विपुरीभावाद्विपुरं प्रोच्यते बुधैः॥ २५॥
सर्वेशत्वाच्च लोकानामवश्यं च तथेश्वरः।
बृहत्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भूतत्वद्भव उच्यते॥ २६॥

द्वन्द्वों के विपुर (विशिष्ट स्थान) होने के कारण इसे पण्डित

गण 'विपुर' कहते हैं। लोकों का सर्वेश होने से यह अवश्य ही 'ईश्वर' है।

बृहत् होने से 'ब्रह्मा' एवं उद्भूत होने से 'भव' कहते हैं। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के विज्ञान एवं एकत्व के कारण इसे 'क' कहते हैं॥ २५-२६॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञविज्ञानादेकत्वाच्च स कः स्मृतः।
यस्मात् पुर्यनुशेते च तस्मात् पुरुष उच्यते॥ २७॥
नोत्पादितत्वात् पूर्वत्वात् स्वयम्भूरिति चोच्यते॥ २८॥

पुरी में शयन करता है इसलिये 'पुरुष' कहलाता है। किसी ने इसे उत्पन्न नहीं किया तथा सबसे पहले होने के हेतु इसे स्वयम्भू कहते हैं॥ २७-२८॥

पर्यायवाचकैः शब्दैस्तत्त्वमाद्यमनुत्तमम्।
व्याख्यातं तत्त्वभावज्ञैरिदं सद्भावचिन्तकैः॥ २९॥

सद्भावों के चिन्तन करने वालों तथा तत्त्वों के भाव जानने वालों ने अनुत्तम आद्य महत् तत्त्व की इस प्रकार व्याख्या पर्यायवाची शब्दों से की है॥ २९॥

महान् सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानः सिसृक्षया।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च तस्य वृत्तिद्वयं स्मृतम्॥ ३०॥

सर्ग की इच्छा से प्रेरित होने पर महान् सृष्टि करता है। संकल्प तथा अध्यवसाय इसकी दो वृत्तियाँ हैं॥ ३०॥

धर्मादीनि च रूपाणि लोकतत्त्वार्थहेतवः।
त्रिगुणस्तु स विज्ञेयः सत्त्वराजसतामसः॥ ३१॥

वायुपुराणे चतुर्थाध्याये वर्णितो ब्रह्मतत्त्वविमर्शः समाप्तः॥

लोकों के तत्त्व पदार्थ के ज्ञान हेतु धर्म आदि इसके रूप हैं तथा यह सात्त्विक, राजस एवं तामस रूप से त्रिगुण है— ऐसा जानना चाहिये॥ ३१॥

वायुपुराण के चतुर्थ अध्याय में वर्णित
ब्रह्मतत्त्वविमर्श समाप्त हुआ॥



ब्रह्मणः सभा

नारद०

पितामह-सभां तात कथ्यमानां निबोध मे।
शक्यते या न निर्देष्टुमेवंरूपेति भारत॥ १॥

नारद जी— तात भारत! अब तुम मेरे मुख से कही हुई पितामह ब्रह्माजी की सभा का वर्णन सुनो! वह सभा ऐसी है, इस रूप से नहीं बतायी जा सकती॥ १॥

पुरा देवयुगे राजन्नादित्यो भगवान् दिवः।
आगच्छन्मानुषं लोकं दिदृक्षुर्विगतक्लमः॥ २॥
चरन् मानुषरूपेण सभां दृष्ट्वा स्वयम्भुवः।
स तामकथयन्मह्यं ब्राह्मीं तत्त्वेन पाण्डव॥ ३॥

राजन्! पहले सत्ययुग की बात है, भगवान् सूर्य ब्रह्माजी की सभा देखकर फिर मनुष्यलोक को देखने के लिये बिना परिश्रम के ही द्युलोक से उतरकर इस लोक में आये और मनुष्यरूप से इधर-उधर विचरने लगे। पाण्डुनन्दन! सूर्यदेव ने मुझसे उस ब्राह्मी सभा का यथार्थतः वर्णन किया॥ २-३॥

अप्रमेयां सभां दिव्यां मानसीं भरतर्षभ!
अनिर्देश्यां प्रभावेण सर्वभूतमनोरमाम्॥ ४॥

भरतश्रेष्ठ! वह सभा अप्रमेय, दिव्य, ब्रह्माजी के मानसिक सङ्कल्प से प्रकट हुई तथा समस्त प्राणियों के मन को मोह लेने वाली है। उसका प्रभाव अवर्णनीय है॥ ४॥

श्रुत्वा गुणानहं तस्याः सभायाः पाण्डवर्षभ!
दर्शनेप्सुस्तथा राजन्नादित्यमिदमब्रुवम्॥ ५॥

पाण्डुकुलभूषण युधिष्ठिर! उस सभा के अलौकिक गुण सुनकर मेरे मन में उसके दर्शन की इच्छा जाग उठी और मैंने सूर्यदेव से कहा— ॥ ५॥

भगवन् द्रष्टुमिच्छामि पितामहसभां शुभाम्।
येन वा तपसा शक्या कर्मणा वापि गोपते॥ ६॥
औषधैर्वा तथा युक्तैरुत्तमा पापनाशिनी।
तन्ममाचक्ष्व भगवन् पश्येयं तां सभां यथा॥ ७॥

'भगवन्! मैं भी ब्रह्माजी की कल्याणमयी सभा का दर्शन करना चाहता हूँ। किरणों के स्वामी सूर्यदेव! जिस तपस्या से, सत्कर्म से अथवा उपयुक्त ओषधियों के प्रभाव से उस पापनाशिनी उत्तम सभा का दर्शन हो सके, वह मुझे बताइये। भगवन्! मैं जैसे भी उस सभा को देख सकूँ, उस उपाय का वर्णन कीजिये'॥ ६-७॥

स तन्मम वचः श्रुत्वा सहस्रांशुर्दिवाकरः।
प्रोवाच भरतश्रेष्ठ व्रतं वर्षसहस्रिकम्॥ ८॥
ब्रह्मव्रतमुपास्स्व त्वं प्रयतेनान्तरात्मना।
ततोऽहं हिमवत्पृष्ठे समारेभे महाव्रतम्॥ ९॥

भरतश्रेष्ठ! मेरी वह बात सुनकर सहस्रों किरणों वाले भगवान् दिवाकर ने कहा— ''तुम एकाग्रचित्त होकर ब्रह्माजी के व्रत का पालन करो। वह श्रेष्ठ व्रत एक हजार वर्षों में पूर्ण होगा।'' तब मैंने हिमालय के शिखर पर आकर उस महान् व्रत का अनुष्ठान आरम्भ कर दिया॥ ८-९॥

ततः स भगवान् सूर्यो मामुपादाय वीर्यवान्।
आगच्छत् तां सभां ब्राह्मीं विपाप्मा विगतक्लमः॥ १०॥

तदनन्तर मेरी तपस्या पूर्ण होने पर पापरहित, क्लेशशून्य अ. परम शक्तिशाली भगवान् सूर्य मुझे साथ ले ब्रह्माजी की उस सभा में गये॥ १०॥

एवंरूपेति सा शक्या न निर्देष्टुं नराधिप!
क्षणेन हि बिभर्त्यन्यदनिर्देश्यं वपुस्तथा॥ ११॥

राजन्! वह सभा 'ऐसी ही है' इस प्रकार नहीं बतायी जा सकती; क्योंकि वह एक एक क्षण में दूसरा अनिर्वचनीय स्वरूप धारण कर लेती है॥ ११॥

न वेद परिमाणं वा संस्थानं चापि भारत!
न च रूपं मया तादृग् दृष्टपूर्वं कदाचन॥ १२॥

भारत! उसकी लम्बाई–चौड़ाई कितनी है अथवा उसकी स्थिति क्या है, यह सब मैं कुछ नहीं जानता। मैंने किसी भी सभा का वैसा स्वरूप पहले कभी नहीं देखा था॥ १२॥

सुसुखा सा सदा राजन् न शीता न च घर्मदा।
न क्षुत्पिपासे न ग्लानिं प्राप्य तां प्राप्नुवन्त्युत॥ १३॥

राजन्! वह सदा उत्तम सुख देने वाली है। वहाँ न सर्दी का अनुभव होता है, न गर्मी का। उस सभा में पहुँच जाने पर लोगों को भूख, प्यास और ग्लानि का अनुभव नहीं होता॥ १३॥

नानारूपैरिव कृता मणिभिः सा सुभास्वरैः।
स्तम्भैर्न च धृता सा तु शाश्वती न च सा क्षरा॥ १४॥

वह सभा अनेक प्रकार की अत्यन्त प्रकाशमान मणियों से निर्मित हुई है। वह स्तम्भों के आधार पर नहीं टिकी है और उसमें कभी क्षयरूप विकार न आने के कारण वह नित्य मानी गयी है॥१४॥

दिव्यैर्नानाविधैर्भावैर्भासद्भिरमितप्रभैः ॥ १५॥
अग्निचन्द्रं च सूर्यं च शिखिनं च स्वयम्प्रभा।
दीप्यते नाकपृष्ठस्था भासयन्तीव भास्करम्॥ १६॥

अनन्त प्रभावाले नाना प्रकार के प्रकाशमान दिव्य पदार्थों द्वारा अग्नि, चन्द्रमा और सूर्य से भी अधिक स्वयं ही प्रकाशित होने वाली वह सभा अपने तेज से सूर्यमण्डल को तिरस्कृत करती हुई–सी स्वर्ग से भी ऊपर स्थित हुई प्रकाशित हो रही है॥ १५–१६॥

तस्यां स भगवानास्ते विदधद् देवमायया।
स्वयमेकोऽनिशं राजन् सर्वलोकपितामहः॥ १७॥

राजन्! उस सभा में सम्पूर्ण लोकों के पितामह ब्रह्माजी देवमाया द्वारा समस्त जगत् की स्वयं अकेले ही सृष्टि करते हुए सदा विराजमान होते हैं॥ १७॥

उपतिष्ठन्ति चाप्येनं प्रजानां पतयः प्रभुम्।
दक्षः प्रचेताः पुलहो मरीचिः कश्यपः प्रभुः॥ १८॥
भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च गौतमोऽथ तथाङ्गिराः।
पुलस्त्यश्च क्रतुश्चैव प्रह्लादः कर्दमस्तथा॥ १९॥

भारत! वहाँ दक्ष आदि प्रजापतिगण उन भगवान् ब्रह्माजी की सेवा में उपस्थित होते हैं। दक्ष, प्रचेता, पुलह, मरीचि, प्रभावशाली कश्यप, भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, गौतम, अङ्गिरा, पुलस्त्य, क्रतु, प्रह्लाद, कर्दम॥ १८-१९॥

अथर्वाङ्गिरसश्चैव बालखिल्याः मरीचिपाः।
मनोऽन्तरिक्षं विद्याश्च वायुस्तेजो जलं मही॥ २०॥
शब्दस्पर्शौ तथा रूपं रसो गन्धश्च भारत!
प्रकृतिश्च विकारश्च यच्चान्यत् कारणं भुवः॥ २१॥

अथर्वाङ्गिरस, सूर्यकिरणों का पान करनेवाले बालखिल्य, मन, अन्तरिक्ष, विद्या, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, प्रकृति, विकृति तथा पृथ्वी की रचना के जो अन्य कारण हैं, इन सबके अभिमानी देवता उपस्थित रहते हैं॥ २०-२१॥

अगस्त्यश्च महातेजा मार्कण्डेयश्च वीर्यवान्।
जमदग्निर्भरद्वाजः संवर्तश्च्यवनस्तथा॥ २२॥
दुर्वासाश्च महाभाग ऋष्यशृङ्गश्च धार्मिकः।
सनत्कुमारो भगवान् योगाचार्यो महातपाः॥ २३॥

महातेजस्वी अगस्त्य, शक्तिशाली मार्कण्डेय, जमदग्नि, भरद्वाज, संवर्त, च्यवन, महाभाग दुर्वासा, धर्मात्मा ऋष्यशृङ्ग, महातपस्वी, योगाचार्य भगवान् सनत्कुमार विराजमान रहते हैं॥ २२-२३॥

असितो देवलश्चैव जैगीषव्यश्च तत्त्ववित्।
ऋषभो जितशत्रुश्च महावीर्यस्तथा मणिः॥ २४॥
आयुर्वेदस्तथाष्टाङ्गो देहवांस्तत्र भारत!
चन्द्रमाः सह नक्षत्रैरादित्यश्च गभस्तिमान्॥ २५॥

असित, देवल, तत्त्वज्ञानी जैगीषव्य, शत्रुविजयी ऋषभ, महापराक्रमी मणि।

तथा आठ अङ्गों से युक्त मूर्तिमान् आयुर्वेद, नक्षत्रोंसहित चन्द्रमा, अंशुमाली सूर्य वहाँ शोभायमान होते हैं॥ २४-२५॥

वायवः क्रतवश्चैव संकल्पः प्राण एव च।
मूर्तिमन्तो महात्मानो महाव्रतपरायणाः॥ २६॥

एते चान्ये च बहवो ब्रह्माणं समुपस्थिताः।
अर्थो धर्मश्च कामश्च हर्षो द्वेषस्तपो दमः॥ २७॥

वायु, क्रतु, सङ्कल्प और प्राण— ये तथा और भी बहुत से मूर्तिमान् महान् व्रतधारी महात्मा ब्रह्माजी की सेवा में उपस्थित रहते हैं।

अर्थ, धर्म, काम, हर्ष, द्वेष, तप और दम— ये भी मूर्तिमान् होकर ब्रह्माजी की उपासना करते हैं॥ २६-२७॥

आयन्ति तस्यां सहिता गन्धर्वाप्सरसां गणाः।
विंशतिः सप्त चैवान्ये लोकपालाश्च सर्वशः॥ २८॥
शुक्रो बृहस्पतिश्चैव बुधोऽङ्गारक एव च।
शनैश्चरश्च राहुश्च ग्रहाः सर्वे तथैव च॥ २९॥

गन्धर्वों और अप्सराओं के बीस गण एक साथ उस सभा में आते हैं। सात अन्य गन्धर्व भी जो प्रधान हैं, समस्त लोकपाल, शुक्र, बृहस्पति, बुध, मङ्गल, शनैश्चर, राहु तथा केतु— ये सभी ग्रह वहाँ उपस्थित होते हैं॥ २८-२९॥

मन्त्रो रथन्तरं चैव हरिमान् वसुमानपि।
आदित्याः साधिराजानो नामद्वन्द्वैरुदाहृताः॥ ३०॥
मरुतो विश्वकर्मा च वसवश्चैव भारत!
तथा पितृगणाः सर्वे सर्वाणि च हवींष्यथ॥ ३१॥

सामगानसम्बन्धी मन्त्र, रथन्तरसाम, हरिमान्, वसुमान्, अपने स्वामी इन्द्रसहित बारह आदित्य, अग्नि-सोम आदि युगल नामों से कहे जाने वाले देवता। मरुद्गण, विश्वकर्मा, वसुगण, समस्त पितृगण, सभी हविष्य वहाँ विराजमान रहते हैं॥ ३०-३१॥

ऋग्वेदः सामवेदश्च यजुर्वेदश्च पाण्डव।
अथर्ववेदश्च तथा सर्वशास्त्राणि चैव ह॥ ३२॥
इतिहासोपवेदाश्च वेदाङ्गानि च सर्वशः।
ग्रहा यज्ञाश्च सोमश्च देवताश्चापि सर्वशः॥ ३३॥

पाण्डुनन्दन! ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद तथा सम्पूर्ण शास्त्र।

इतिहास, उपवेद[1], सम्पूर्ण वेदाङ्ग, ग्रह, यज्ञ, सोम और समस्त देवता सशरीर वहाँ उपस्थित रहते हैं॥ ३२-३३॥

सावित्री दुर्गतरणी वाणी सप्तविधा तथा।
मेधा धृतिः श्रुतिश्चैव प्रज्ञा बुद्धिर्यशः क्षमा॥ ३४॥
सामानि स्तुतिगीतानि गाथाश्च विविधास्तथा।
भाष्याणि तर्कयुक्तानि देहवन्ति विशाम्पते॥ ३५॥
नाटका विविधाः काव्यकथाख्यायिककारिकाः।
तत्र तिष्ठन्ति ते पुण्या ये चान्ये गुरुपूजकाः॥ ३६॥

सावित्री, दुर्गम दुःख से उबारनेवाली दुर्गा, सात प्रकार[2] की प्रणवरूपा वाणी, मेधा, धृति, श्रुति, प्रज्ञा, बुद्धि, यश और क्षमा, साम, स्तुतिगीत, विविध गाथा तथा तर्कयुक्त भाष्य— ये सभी देहधारी होकर एवं अनेक प्रकार के नाटक, काव्य, कथा, आख्यायिका तथा कारिका आदि उस सभा में मूर्तिमान् होकर रहते हैं। इसी प्रकार गुरुजनों की पूजा करनेवाले जो दूसरे पुण्यात्मा पुरुष हैं, वे सभी उस सभा में स्थित होते हैं॥ ३४-३६॥

क्षणा लवा मुहूर्ताश्च दिवारात्रिस्तथैव च।
अर्धमासाश्च मासाश्च ऋतवः षट् च भारत॥ ३७॥
संवत्सराः पञ्च युगमहोरात्रश्चतुर्विधः।
कालचक्रं च तद् दिव्यं नित्यमक्षयमव्ययम्।
धर्मचक्रं तथा चापि नित्यमास्ते युधिष्ठिर॥ ३८॥

युधिष्ठिर! क्षण, लव, मुहूर्त, दिन, रात, पक्ष, मास, छहों ऋतुएँ, साठ संवत्सर, पाँच संवत्सरों का युग, चार प्रकार के दिन-रात (मानव, पितर, देवता और ब्रह्माजी के दिन-रात), नित्य, दिव्य, अक्षय एवं अव्यय कालचक्र तथा धर्मचक्र भी देहधारण करके सदा ब्रह्माजी की सभा में उपस्थित रहते हैं॥ ३७-३८॥

---

१. आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थशास्त्र— ये चार उपवेद माने गये हैं।

२. अकार, उकार, मकार, अर्धमात्रा, नाद, बिन्दु और शक्ति— ये प्रणव के सात प्रकार हैं। अथवा संस्कृत, प्राकृत, पैशाची, अपभ्रंश, ललित, मागध और गद्य— ये वाणी के सात प्रकार जानने चाहिये।

अदितिर्दितिर्दनुश्चैव सुरसा विनता इरा।
कालिका सुरभीदेवी सरमा चाथ गौतमी॥ ३९॥
प्रभा कद्रूश्च वै देव्यौ देवतानां च मातरः।
रुद्राणी श्रीश्च लक्ष्मीश्च भद्रा षष्ठी तथापरा॥ ४०॥
पृथ्वी गां गता देवी ह्रीः स्वाहा कीर्तिरेव च।
सुरादेवी शची चैव तथा पुष्टिररुन्धती॥ ४१॥
संवृत्तिराशा नियतिः सृष्टिर्देवी रतिस्तथा।
एताश्चान्याश्च वै देव्यः उपतस्थुः प्रजापतिम्॥ ४२॥

अदिति, दिति, दनु, सुरसा, विनता, इरा, कालिका, सुरभी देवी, सरमा, गौतमी, प्रभा और कद्रू— ये दो देवियाँ, देवमाताएँ, रुद्राणी, श्री, लक्ष्मी, भद्रा, षष्ठी तथा अपरा, पृथ्वी, भूतल पर उतरी हुई गङ्गादेवी, लज्जा, स्वाहा, कीर्ति, सुरादेवी, शची, पुष्टि, अरुन्धती, संवृत्ति, आशा, नियति, सृष्टिदेवी, रति तथा अन्य देवियाँ भी उस सभा में प्रजापति ब्रह्माजी की उपासना करती हैं॥ ३९-४२॥

आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्चाश्विनावपि।
विश्वेदेवाश्च साध्याश्च पितरश्च मनोजवाः॥ ४३॥

आदित्य, वसु, रुद्र, मरुद्गण, अश्विनीकुमार, विश्वेदेव, साध्य तथा मन के समान वेगशाली पितर भी उस सभा में उपस्थित होते हैं॥ ४३॥

पितॄणां च गणान् विद्धि सप्तैव पुरुषर्षभ!
मूर्तिमन्तो हि चत्वारस्त्रयश्चाप्यशरीरिणः॥ ४४॥

नरश्रेष्ठ! तुम्हें मालूम होना चाहिये कि पितरों के सात ही गण होते हैं, जिनमें चार तो मूर्तिमान् हैं और तीन अमूर्त॥ ४४॥

वैराजाश्च महाभागा अग्निष्वात्ताश्च भारत!
गार्हपत्या नाकचराः पितरो लोकविश्रुताः॥ ४५॥
सोमपा एकशृङ्गाश्च चतुर्वेदाः कलास्तथा।
एते चतुर्षु वर्णेषु पूज्यन्ते पितरो नृप॥ ४६॥

भारत! सम्पूर्ण लोकों में विख्यात स्वर्गलोक में विचरनेवाले महाभाग वैराज, अग्निष्वात्त, सोमपा, गार्हपत्य (ये चार मूर्त हैं),

एकशृङ्ग, चतुर्वेद तथा कला (ये तीन अमूर्त हैं)। ये सातों पितर क्रमशः चारों वर्णों में पूजित होते हैं॥ ४४-४६॥

एतैराप्यायितैः पूर्वं सोमश्चाप्याय्यते पुनः।
त एते पितरः सर्वे प्रजापतिमुपस्थिताः।
उपासते च संहृष्टा ब्रह्माणममितौजसम्॥ ४७॥

राजन्! पहले इन पितरों के तृप्त होने से सोम देवता भी तृप्त हो जाते हैं। ये सभी पितर उक्त सभा में उपस्थित हो प्रसन्नतापूर्वक अमित तेजस्वी प्रजापति ब्रह्माजी की उपासना करते हैं॥ ४७॥

राक्षसाश्च पिशाचाश्च दानवा गुह्यकास्तथा।
नागा सुपर्णाः पशवः पितामहमुपासते॥ ४८॥
स्थावरा जङ्गमाश्चैव महाभूतास्तथापरे।
पुरन्दरश्च देवेन्द्रो वरुणो धनदो यमः॥
महादेवः सहोमोऽत्र सदा गच्छति सर्वशः॥ ४९॥

इसी प्रकार राक्षस, पिशाच, दानव, गुह्यक, नाग, सुपर्ण तथा श्रेष्ठ पशु भी वहाँ पितामह ब्रह्माजी की उपासना करते हैं। स्थावर और जङ्गम महाभूत, देवराज इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम तथा पार्वतीसहित महादेवजी— ये सब सदा उस सभा में पधारते हैं॥ ४८-४९॥

महासेनश्च राजेन्द्र सदोपास्ते पितामहम्।
देवो नारायणस्तस्यां तथा देवर्षयश्च ये॥
ऋषयो बालखिल्याश्च योनिजायोनिजास्तथा॥ ५०॥

राजेन्द्र! स्वामी कार्तिकेय भी वहाँ उपस्थित होकर सदा ब्रह्मा जी की सेवा करते हैं। भगवान् नारायण, देवर्षिगण, बालखिल्य ऋषि तथा दूसरे अयोनिज और योनिज ऋषि उस सभा में ब्रह्मा जी की आराधना करते हैं॥ ५०॥

यच्च किञ्चित् त्रिलोकेऽस्मिन् दृश्यते स्थाणु जङ्गमम्।
सर्वं तस्यां मया दृष्टमिति विद्धि नराधिप॥ ५१॥

नरेश्वर! संक्षेप में यह समझ लो कि तीनों लोकों में स्थावर-जङ्गम भूतों के रूप में जो कुछ भी दिखायी देता है, वह सब मैंने उस सभा में देखा था॥ ५१॥

अष्टाशीतिसहस्राणि ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम्।
प्रजावतां च पञ्चाशदृषीणामपि पाण्डव॥ ५२॥

पाण्डुनन्दन! अट्ठासी हजार ऊर्ध्वरेता ऋषि और पचास सन्तानवान् महर्षि उस सभा में उपस्थित होते हैं॥ ५२॥

ते स्म तत्र यथाकामं दृष्ट्वा सर्वे दिवौकसः।
प्रणम्य शिरसा तस्मै सर्वे यान्ति यथाऽऽगतम्॥ ५३॥

वे सब महर्षि तथा सम्पूर्ण देवता वहाँ इच्छानुसार ब्रह्माजी का दर्शन कर उन्हें मस्तक झुकाकर, प्रणाम करते और आज्ञा लेकर जैसे आये होते हैं, वैसे ही चले जाते हैं॥ ५३॥

अतिथीनागतान् देवान् दैत्यान् नागाँस्तथा द्विजान्।
यक्षान् सुपर्णान् कालेयान् गन्धर्वाप्सरसस्तथा॥ ५४॥
महाभागानमितधीर्ब्रह्मा लोकपितामहः।
दयावान् सर्वभूतेषु यथार्हं प्रतिपद्यते॥ ५५॥

अगाध बुद्धिवाले, दयालु लोकपितामह ब्रह्माजी अपने यहाँ आये हुए सभी महाभाग अतिथियों— देवता, दैत्य, नाग, पक्षी, यक्ष, सुपर्ण, कालेय, गन्धर्व तथा अप्सराओं एवं सम्पूर्ण भूतों से यथायोग्य मिलते हैं और उन्हें अनुगृहीत करते हैं॥ ५४-५५॥

प्रतिगृह्य तु विश्वात्मा स्वयम्भूरमितद्युतिः।
सान्त्वमानार्थसम्भोगैर्युनक्ति मनुजाधिप॥ ५६॥

मनुजेश्वर! अमित तेजस्वी विश्वात्मा स्वयम्भू उन सब अतिथियों को अपनाकर उन्हें सान्त्वना देते, उनका सम्मान करते, उनके प्रयोजन की पूर्ति करके उन सब को आवश्यकता तथा रुचि के अनुसार भोगसामग्री प्रदान करते हैं॥ ५६॥

तथा तैरुपयातैश्च प्रतियद्भिश्च भारत!
आकुला सा सभा तात भवति स्म सुखप्रदा॥ ५७॥

तात भारत! इस प्रकार वहाँ आने-जाने वाले लोगों से भरी हुई वह सभा बड़ी सुखदायिनी जान पड़ती है॥ ५७॥

सर्वतेजोमयी दिव्या ब्रह्मर्षिगणसेविता।
ब्राह्मया श्रिया दीप्यमाना शुशुभे विगतक्लमा॥ ५८॥

नृपश्रेष्ठ ! वह सभा सम्पूर्ण तेज से सम्पन्न, दिव्य तथा ब्रह्मर्षियों के समुदाय से सेवित और पापरहित एवं ब्राह्मी श्री से उद्भासित और सुशोभित होती रहती है॥ ५८॥

सा सभा तादृशी दृष्टा मया लोकेषु दुर्लभा।
सभेयं राजशार्दूल मनुष्येषु यथा तव॥ ५९॥

ऐसी उस सभा का मैंने दर्शन किया है। जैसे मनुष्यलोक में तुम्हारी यह सभा दुर्लभ है, वैसे ही सम्पूर्ण लोकों में ब्रह्माजी की सभा भी परम दुर्लभ है॥ ५९॥

श्रीमहाभारते सभापर्वणि लोकपालसभाख्यानपर्वणि
ब्रह्मसभावर्णनं नामैकादशोऽध्यायः सम्पूर्णः॥ ११॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत सभापर्व के अन्तर्गत लोकपालसभाख्यानपर्व में ब्रह्मसभावर्णन नामकग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥



ब्रह्मणो मूर्तिरचना

मार्कण्डेय०

ब्रह्माणं कारयेद् विद्वान् देवं सौम्यं चतुर्मुखम्।
बद्धपद्मासनं तोष्यं तथा कृष्णाजिनाम्बरम्॥ १॥

मार्कण्डेय— विद्वान् मूर्तिकार को ब्रह्मा जी की ऐसी मूर्ति (=चित्राकृति) बनानी चाहिये, जिसमें भगवान् ब्रह्मा सौम्यावस्था में, चतुर्भुज रूप में, पद्मासन लगाकर बैठे हुए तथा काला मृगचर्म पहने हुए हों॥ १॥

जटाधरं चतुर्बाहुं सप्तहंसे रथे स्थितम्।
वामे न्यस्तं करतले तस्यैकं दोर्युगं भवेत्॥ २॥

जो जटा धारण किये हुए हों, जिनके चार भुजाएँ हों, जो सात हंस जुते हुए रथ पर विराजमान हों, तथा (पद्मासनस्थ अवस्था में) बाँये हाथ पर दाहिना हाथ रखे हुए हों॥ २॥

एकस्मिन् दक्षिणे पाणावक्षमाला तथा शुभा।
कमण्डलुर्द्वितीये च सर्वाभरणधारिणः॥ ३॥

दक्षिण वाले एक हाथ में शुभ रुद्राक्ष की माला हो, और दूसरे (वाम) हाथ में कमण्डलु लिये हुए हों। तथा जो अपने शरीर पर यथास्थान सभी अलङ्कार धारण किये हों॥ ३॥

सर्वलक्षणयुक्तस्य शान्तरूपस्य पार्थिव!
पद्मपत्रदलाग्राभं ध्यानसम्मीलितेक्षणम्॥ ४॥

हे राजन्! वह मूर्ति ऐसी हो जिसमें ब्रह्मा जी शरीर के सभी शुभ लक्षणों से युक्त हों, तथा शान्तरूप मे ध्यान मग्न हों। जिनके शरीर का वर्ण कमलपुष्प के अग्रभाग के समान अरुण (पीत मिश्रित रक्त) हो॥ ४॥

अर्चायां कारयेदेवं चित्रे वा पुस्तकर्मणि॥ ५॥

पूजन के समय, या तत्सम्बद्ध पुस्तक आदि के प्रारम्भ में ब्रह्मा जी का यही (ऐसा ही) चित्र होना चाहिये ॥ ५ ॥

अरुणं रजसा वर्णं तेन पद्माग्रसन्निभः।
ब्रह्मा देववरो ज्ञेयः सर्वभूतनमस्कृतः ॥ ६ ॥

ब्रह्मा जी के शरीर का अरुण (पीत-रक्त) वर्ण होता है जैसे पद्म के अग्रभाग का वर्ण होता है। सर्व प्राणियों के वन्दनीय, वे दिवसभा में विराजमान देवश्रेष्ठ ब्रह्मा इसी वर्ण से भक्तों द्वारा पहचाने जाते हैं ॥ ६ ॥

ऋग्वेदः पूर्ववदनं यजुर्वेदस्तु दक्षिणम्।
पश्चिमं सामवेदः स्यात् आथर्वणमथोत्तरम् ॥ ७ ॥

ब्रह्मा जी के चार मुखों में पूर्वाभिमुख मुख 'ऋग्वेद' कहलाता है, दक्षिण मुख 'यजुर्वेद' कहलाता है। पश्चिम मुख 'सामवेद' कहलाता है तथा उत्तर की तरफ वाला मुख अथर्ववेद कहलाता है ॥ ७ ॥

ये वेदास्ते मुखा ज्ञेयाश्चतस्रो बाहवो दिशः।
आप एव जगत्सर्वं स्थावरं जङ्गमं तथा।

व्यवहार में जो चार वेद कहलाते हैं वे ही ब्रह्मा के चार मुख हैं। चारों दिशाएँ ही उनकी चार बाहुएँ हैं। जल ही यह समग्र स्थावर जङ्गम जगत् (उनके द्वारा रचित सृष्टि) है।

ताश्च धारयते ब्रह्मा तेन हस्ते कमण्डलुः ॥ ८ ॥
अक्षमाला विनिर्दिष्टा कालस्तु ब्रह्मणः करे।
कलनात् सर्वभूतानां काल इत्यभिधीयते ॥ ९ ॥

उस जलरूप सृष्टि को ब्रह्मा जी धारण करते हैं एतदर्थ वह जलपूर्ण कमण्डलु अपने हाथ में धारण किये रहते हैं ॥ ८ ॥ ब्रह्मा जी रुद्राक्ष की माला कर में काल के प्रतीकस्वरूप धारण किये रहते हैं। काल सब प्राणियों का कलन (क्षरण) करता है अतः 'काल' कहलाता है ॥ ९ ॥

यज्ञो विस्तीर्यते सर्वः शुक्लाशुक्लेन कर्मणा।
शुक्लाशुक्लमतो ज्ञेयं वासः कृष्णाजिनं विभोः ॥ १० ॥

समस्त यज्ञ शुक्ल (शुभ) या अशुक्ल (अशुभ) कर्मों के

माध्यम से ही हुआ करते हैं। इसी के प्रतीक स्वरूप देवाधिदेव ब्रह्मा श्वेत एवं कृष्णवर्णमिश्रित मृगचर्म वस्त्र के स्थान पर धारण किये रहते हैं॥ १०॥

भूर्लोकश्च भुवोलोकः स्वर्लोकोऽथ महत् तथा।
जनस्तपश्च सत्यं च सप्तलोकाः प्रकीर्त्तिताः॥ ११॥
ये लोकास्ते रथे हंसा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥ १२॥

भूः, भुवः, स्वः, महत्, जन, तपस् एवं सत्य— शास्त्रों में ये सात लोक कहे गये हैं। ब्रह्मा जी के रथ में जुते हुए सात हंस इन्हीं सात लोकों के प्रतीक हैं॥ १२॥

विष्णुनाभौ समुत्पन्नं यत् पद्मं सा महीभुजः।
मेरुस्तु कर्णिका तस्य विज्ञेया राजसत्तम!॥ १३॥

हे राजश्रेष्ठ! विष्णु की नाभि में उत्पन्न पद्म हैं उनकी कर्णिका (ग्रन्थि) पर्वत राज सुमेरु के वर्ण वाली (सुनहरी) हैं॥ १३॥

सर्वत्र पार्थिव! स्थैर्यं ध्यानबन्धमतः स्थितम्।
पद्मासनेन भगवान् विद्यते पार्थिवेन तु॥ १४॥

अतः हे राजन्! भगवान् ब्रह्मा स्थिर ध्यान हेतु उस पद्म पर आसन लगाकर विराजमान रहते हैं॥ १४॥

आत्मनः परमं धाम रूपहीनं विचिन्तयेत्।
दृष्ट्यर्थं जगतामास्ते ध्यानसम्मीलिते क्षणः॥ १५॥

वहाँ बैठकर वे नीरूप आत्मा का ध्यान करते रहते हैं। साथ ही अपनी बनायी हुई सृष्टि के हिताहित के विषय में सर्वथा चिन्तन करते रहते हैं॥ १५॥

तथैवौषधयो राजन! जगद्धारणकारणाः।
ब्रह्मणस्ता जटा ज्ञेयाः सर्वगस्य महात्मनः॥ १६॥

हे राजन्! जगत् की रक्षा में अत्यधिक उपयोगी ये ओषधियाँ ही उन सर्वत्र अबाधगति महात्मा ब्रह्मा की जटाएँ हैं॥ १६॥

प्रकाशकानि लोकस्य विद्यास्थानानि यानि च।
तस्याभरणजातानि ज्ञेयानि परमेष्ठिनः॥ १७॥

संसार के मार्ग–प्रदर्शक जितने भी विद्यास्थान हैं वे ही उन ब्रह्मा के शरीर के आभूषण हैं॥ १७॥

एतद्धि तस्याप्रतिमस्य रूपं तवेरितं सर्वजगन्मयस्य।
एवं शरीरेण जगत् समग्रं सन्धारयत्येष जगत्प्रधानः॥ १८॥

इस तरह हे राजन्! उस सर्वव्यापक ब्रह्मदेव के शरीर के अनुपम आकार का वर्णन मैंने तुमसे कर दिया। इसी शरीर के माध्यम से वे ब्रह्मा इस जगत् की सृष्टि एवं रक्षा करते रहते हैं॥ १८॥

सौवर्णं राजतं ताम्रमारकूटमयं तथा।
द्विहस्तमात्रं कर्त्तव्यं कमलं चारुकेसरम्॥ १९॥

सोना, चान्दी, ताम्र या पीतल— इनमें से किसी एक धातु का दो हाथ चौड़ा पद्म का आकार बनावे, जिसमें सुन्दर केसर (पुष्प की आभा) अङ्कित हो॥ १९॥

तस्याष्टभागाः कर्त्तव्याः, कर्णिका नृप वर्तुला।
अष्टभागोच्छ्रिताचैव, पत्रेन्यस्ता तु कारयेत्॥ २०॥

हे राजन्! उसके आठवें भाग की बीच में उभरी हुई गाँठ बनावे। वह आठवें भाग से ही ऊँची हो। उस गाँठ के चारों ओर कमल पुष्प की पत्तियाँ बनी हुई हों॥ २०॥

एकतोनत्रिपञ्चाशत् कर्णिकायां तु कारयेत्।
वर्तुला कर्णिकाच्छेदा यवमात्रसमन्विता॥ २१॥

उस बड़ी गाँठ में यव के समान पृथक् पृथक् बावन (५२) छोटी छोटी गोल गाँठें बनानी चाहिये॥ २१॥

षोडशांशेन कर्त्तव्यं तद्धि विस्तरतस्तथा।
शेषं पत्रैस्तु सुस्निग्धैः पूरयेदष्टभिस्तथा॥ २२॥

उस पद्म पुष्प के आकार के सोलह (१६) वें भाग में ही यह गाँठ बनानी चाहिये। अवशिष्ट भाग में कमल पुष्प की स्निग्ध एवं सुन्दर आठ (८) पत्तियाँ बनावें॥ २२॥

तस्य प्रतिष्ठा कर्त्तव्या तत्र देवाँस्तु पूजयेत्।
ब्रह्माणं पूजयेत् तत्र, तत्र सम्पूजयेद्धरिम्॥ २३॥

उस पद्म की प्रतिष्ठा करनी चाहिये। फिर उस पर देवता की पूजा करनी चाहिये। भले ही वहाँ ब्रह्मा की मूर्ति प्रतिष्ठित कर

उसकी पूजा करें, या विष्णु की मूर्ति प्रतिष्ठित कर विष्णु की पूजा करें ॥ २३ ॥

तत्र सम्पूजयेद् रुद्रं तत्र सम्पूजयेच्छ्रियम्।
तत्र सम्पूजयेच्छक्रं देवराजं जगत्पतिम्।
तत्र सम्पूजयेत् सूर्यं शशिनं तत्र पूजयेत् ॥ २४ ॥

वहाँ शङ्कर या भगवती लक्ष्मी की मूर्ति प्रतिष्ठित कर उसकी पूजा कर सकते हैं या फिर जगत्पति देवराज इन्द्र की (उस पद्मपुष्प पर) सूर्य या चन्द्रमा की मूर्ति प्रतिष्ठित कर उनकी भी पूजा कर सकते हैं ॥ २४ ॥

यमेव मनसोद्दिश्य देवं पद्मं प्रतिष्ठितम् ॥
तमेव पूजयेत्तत्र नान्यं देवं कथञ्चन ॥ २५ ॥

कहने का तात्पर्य यह है कि जिस देवता की कामना से पद्म की प्रतिष्ठा की गयी हो उसी की पूजा करें। प्रतिबन्ध इतना ही है कि उस पद्मपुष्प पर स्वाभीप्सित एक ही देवता की पूजा हो सकती है, चाहे जिस किसी देवता की नहीं ॥ २५ ॥

पद्मस्य रूपं कथितं तवैतत् पद्मं समग्रा वसुधा निरुक्ता।
तत्रार्चनं कार्यमथेश्वराणां तत्रार्चितास्ते वरदा भवन्ति ॥ २६ ॥

यहाँ जिस कमल का वर्णन किया गया है, वह पृथ्वी को ही बताया गया है। वहाँ उपर्युक्त अपने इष्ट देव ब्रह्मा का पूजन करना चाहिये। इससे वे प्रसन्न हो वरदायक होते हैं ॥ २६ ॥

अष्टपत्रं तु कमलं विन्यसेद् वर्णकैः शुभैः।
ब्रह्माणं कर्णिकायां तु तस्य सम्पूजयेद् विभुम् ॥ २७ ॥

शुभ अङ्कनों (न्यासों) से अष्ट पत्र वाला कमल निर्मित करे और उसके बीच की ग्रन्थि (कर्णिका) पर देवाधिदेव ब्रह्मा की मूर्ति निर्मितकर पूजा करे ॥ २७ ॥

ऋग्वेदं पूर्वपत्रे तु, यजुर्वेदं तु दक्षिणे।
पश्चिमे सामवेदंतु, उत्तरेऽथर्वणं तथा ॥ २८ ॥

कमल के उन आठ पत्रों में से पूर्व दिशा के पत्र पर ऋग्वेद, दक्षिण पर यजुर्वेद, पश्चिम वाले पत्र पर सामवेद, और उत्तर दिशा

वाले पत्र पर अथर्ववेद अङ्कित करें॥ २८॥

आग्नेये च तथाङ्गानि धर्मशास्त्राणि नैर्ऋते।
पुराणान्येव वायव्ये चैशान्यां न्यायविस्तरम्॥ २९॥

आग्नेय दिशा के पत्र पर वेदाङ्गों, नैर्ऋत्य दिशा में धर्मशास्त्रों, वायव्य दिशा में पुराणों का तथा ऐशानी दिशा के पत्र पर न्याय-वैशेषिक आदि शास्त्रों को अङ्कित करें॥ ३॥

एवं विन्यस्य धर्मज्ञः सोपवासस्तु पूजयेत्।
चैत्रशुक्लादथारभ्य सोपवासो जितेन्द्रियः॥ ३०॥
सदा प्रतिपदं प्राप्य शुक्लपक्षस्य यादव।
संवत्सरं महाभाग! शुक्लगन्धानुलेपनैः॥ ३१॥

हे यदुपति! इस तरह, विधिका ज्ञाता वह देवोपासक उपवास व्रत रखकर इन्द्रियों पर संयम करते हुए चैत्रमास के शुक्लपक्ष से प्रारम्भ कर वर्षभर सदैव में शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के दिन श्वेत गन्धादि द्रव्य अनुलेपन द्रव्य से॥ ३०-३१॥

भूरिणा परमान्नेन धूपदीपैरतन्द्रितः।
संवत्सरान्ते गां दद्याद् व्रते पूर्णे नरोत्तम॥ ३२॥

हे राजन्! अतिशय श्रेष्ठ अन्नदान से, धूपदीपों से, उत्साह सम्पन्न होकर संवत्सर के अन्त में पूजा समाप्ति के अवसर पर गोदान भी करे॥ ३२॥

इदं व्रतं यस्तु करोति राजन्! स वेदवित् स्याद् भुवि धर्मनित्यः।
कृत्वा तदा द्वादश वत्सराणि विधेश्च लोकः पुरुषः प्रयाति॥ ३३॥

हे राजन्! जो उपासक यह व्रत करेगा वह संसार में धर्म के मर्म को जानता हुआ वेद का ज्ञाता हो जायगा। वह इस प्रकार निरन्तर बारह वर्ष तक पूजा करने पर ब्रह्म लोक प्राप्ति का अधिकारी हो जायगा॥ ३३॥

विष्णुधर्मोत्तरपुराण के ३१ वें अध्याय में ब्रह्मा की मूर्तिरचना आदि का विधान समाप्त॥



ब्रह्मणः पूजा

शतानीक ०

ब्रूहि मे विस्तराद् ब्रह्मन्प्रतिपत्कृत्यमादरात्।
ब्रह्मपूजाविधानं च पूजने यच्च वै फलम्॥ १॥

शतानीक— ब्रह्मन्! अब मुझे विस्तारपूर्वक प्रतिपदा में किये जाने वाले कार्य और उक्त ब्रह्मा की पूजा का विधान सादर बतलाइये और यह भी बतलाइये कि उस पूजन से क्या फल प्राप्त होता है॥ १॥

सुमन्तु०

शृणुष्वैकमना राजन् कथयाम्येष शान्तिदम्।
पूर्वमेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे॥ २॥
स्वयम्भूरभवद्देवः सुरज्येष्ठश्चतुर्मुखः।
ससर्ज लोकान् देवांश्च भूतानि विविधानि च॥ ३॥
कायेन मनसा वाचा जङ्गमस्थावराणि च।
पिता यः सर्वदेवानां भूतानां च पितामहः॥ ४॥

सुमन्तु— राजन्! एकाग्रचित्त होकर सुनिये। इस शान्तिप्रद कथा को मैं कह रहा हूँ। प्राचीनकाल में जब स्थावर एवं जङ्गम रूप समस्त जगत् घोर महासमुद्र में नष्ट हो गया था उस समय स्वयं उत्पन्न सुरश्रेष्ठ चतुर्मुख भगवान् ब्रह्मा प्रकट हुए। उन्होंने ही समस्त देवताओं, लोकों और अनेक प्रकार के भूतों की सृष्टि की। मनसा वाचा कर्मणा उन्होंने स्थावर जङ्गम जीवसमूहों की पुनः सृष्टि की। इसीलिये वे देवताओं के पिता तथा समस्त भूतों के पितामह कहे जाते हैं॥ २-४॥

तस्मादेव सदा पूज्यो यतो लोकगुरुः परः।
सृजत्येष जगत् कृत्स्नं पाति संहरते तथा॥ ५॥

और इसीलिये सदा परम पूज्य भी माने गये हैं; क्योंकि लोक में वे सबसे बढ़कर महान् हैं। वे ही समस्त संसार की सृष्टि, उसका पालन तथा अन्त में सब का संहार करते हैं ॥ ५ ॥

रुद्रोऽस्य मनसो जातो विष्णुर्जातोऽस्य वक्षसः।
मुखेभ्यश्चतुरो वेदा वेदाङ्गानि च कृत्स्नशः ॥ ६ ॥

रुद्र उनके मन से तथा विष्णु उनके वक्षस्थल से उत्पन्न हुए हैं। उन्हीं के मुखों से चारों वेद एवं समस्त वेदाङ्ग प्रादुर्भूत हुए हैं ॥ ६ ॥

देवाप्सरसगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः।
पूजयन्ति सदा वीर विरिञ्चिं सुरनायकम् ॥ ७ ॥

हे वीर! सुरश्रेष्ठ उन भगवान् विरञ्चि की देव अप्सरा, गन्धर्व, यक्ष, उरग एवं राक्षसगण सर्वदा पूजा करते हैं ॥ ७१ ॥

सर्वो ब्रह्ममयो लोकः सर्वं ब्रह्मणि संस्थितम्।
तस्मात् समर्चयेद् ब्रह्मन् य इच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ ८ ॥

सभी लोक ब्रह्ममय हैं सभी ब्रह्मा में स्थित हैं इसलिये जो अपना कल्याण चाहता है उसे ब्रह्मा की पूजा करनी चाहिये ॥ ८ ॥

यो न पूजयते भक्त्या सुरज्येष्ठं सुरेश्वरम्।
न स नाकस्य राज्यस्य न च मोक्षस्य भाजनम् ॥ ९ ॥

सुरेश्वर, सुरज्येष्ठ उन भगवान् ब्रह्मा की जो मनुष्य भक्तिपूर्वक पूजा नहीं करता वह स्वर्ग, राज्य और मोक्ष का भाजन नहीं होता ॥९ ॥

यस्तु पूजयते भक्त्या विरिञ्चिं भुवनेश्वरम्।
स नाकराज्यमोक्षेषु क्षिप्रं भवति भाजनम् ॥ १० ॥

जो मनुष्य भुवनेश्वर विरिञ्चि की भक्तिपूर्वक पूजा करता है वह शीघ्र ही स्वर्ग, राज्य एवं मोक्ष का भाजन बनता है ॥ १० ॥

तस्मात् सौम्यमना भूत्वा यावज्जीवं प्रतिज्ञया।
अर्चयित्वा सदा देवमापन्नोऽपि नरो नृप ॥ ११ ॥

इसलिये हे राजन्! मनुष्य को चाहिये कि वह चाहे कैसी भी विपत्ति में क्यों न पड़ा हो जब तक जीवित रहे प्रतिज्ञापूर्वक प्रसन्न मन से सर्वदा देवाधिदेव भगवान् ब्रह्मा की पूजा में निरत रहे ॥ ११ ॥

वरं देहपरित्यागो वरं नरकसम्भवः।
न त्वेवापूज्य भुञ्जन्ति देवं वै पद्मसम्भवम्॥ १२॥

पद्मयोनि भगवान् ब्रह्मा की पूजा न करके जो लोग भोजन कर लेते हैं उनके लिये इस जीवन से शरीर का परित्याग करना तथा न क में गिरना ही श्रेष्ठ है॥ १२॥

सदा पूजयते यस्तु वीर भक्त्या पितामहम्।
मनुष्यचर्मणा नद्धः स वेधा नात्र संशयः॥ १३॥

हे वीर! जो मनुष्य सर्वदा भक्तिपूर्वक पितामह भगवान् ब्रह्मा की पूजा करते हैं वे निसन्देह मनुष्य के चर्म में नधा हुआ साक्षात् ब्रह्मा ही हैं॥ १३॥

न हि वेधोऽर्चनात्किञ्चित् पुण्यमभ्यधिकं भवेत्।
इति विज्ञाय यत्नेन पूजनीयः सदा विधिः॥ १४॥

भगवान् ब्रह्मा की पूजा से अधिक कोई पुण्य इस संसार में नहीं है, ऐसा समझ कर मनुष्य को यत्नपूर्वक ब्रह्मा की सर्वदा पूजा करनी चाहिये॥ १४॥

यो ब्रह्माणं द्वेष्टि मोहात् सर्वदेवनमस्कृतम्।
नरो नरकगामी स्यात् तस्य सम्भाषणादपि॥ १५॥

जो मनुष्य सभी देवताओं द्वारा नमस्कृत भगवान् ब्रह्मा के साथ मोहवश द्वेष करता है वह नरकगामी होता है। यही नहीं उस पापात्मा के साथ सम्भाषण करने से भी नरकगामी होना पड़ता है॥ १५॥

ब्रह्मणोऽर्चां प्रतिष्ठाप्य सर्वयत्नैर्विधानतः।
यत्पुण्यं फलमाप्नोति तदेकाग्रमनाः शृणु॥ १६॥

भगवान् ब्रह्मा की प्रतिमा को प्रतिष्ठापित कर सभी यत्नों से विधिपूर्वक पूजा करके मनुष्य जो पुण्यफल प्राप्त करता है उसे एकाग्र मन से सुनिये॥ १६॥

सर्वयज्ञतपोदानतीर्थवेदेषु यत्फलम्।
तत् फलं कोटिगुणितं लभेद्वेधः प्रतिष्ठया॥ १७॥

सब प्रकार के यज्ञ, तप, दान, तीर्थसेवन एवं वेदाध्ययन से जिस पुण्य की प्राप्ति होती है उससे कोटिगुणित फल ब्रह्मा की मूर्ति प्रतिष्ठा करने वाले प्राप्त करते हैं॥ १७॥

कञ्जजं स्थापयेद्यस्तु कृत्वा शालां मनोरमाम्।
सर्वांगमोदितं पुण्यं कोटिकोटिगुणं लभेत्॥ १८॥

जो मनुष्य उत्तम मन्दिर का निर्माण कर उसमें ब्रह्मा की प्रतिष्ठा करता है वह सभी शास्त्रों में कहे गये पुण्यों से कोटिगुणित अधिक पुण्यफल की प्राप्ति करता है॥ १८॥

मातृजान्पितृजांश्चैव यां चैवोद्वहते स्त्रियम्।
कुलैकविंशमुत्तार्य ब्रह्मलोके महीयते॥ १९॥

वह महान् पुण्यशाली मनुष्य अपने मातृकुल, पितृकुल तथा जिस स्त्री के साथ विवाह करता है उस कुल की इक्कीस पीढ़ियों को तारता है और स्वयं ब्रह्मलोक में पूजित होता है॥ १९॥

भुक्त्वा तु विपुलान् भोगान् प्रलये समुपस्थिते।
ज्ञानयोगं समासाद्य स तत्रैव विमुच्यते॥ २०॥

वहाँ विपुल भोगों का अनुभव कर प्रलय के अवसर पर ज्ञानयोग की सिद्धि प्राप्त कर वहीं वह मुक्त भी हो जाता है॥ २०॥

अथ वा राज्यमाकांक्षेज्जायते सम्भवान्तरे।
सप्तद्वीपसमुद्रायाः क्षितेरधिपतिर्भवेत्॥ २१॥

अथवा यदि वह ब्रह्मलोक में राज्य प्राप्ति की कामना करता है तो जन्मान्तर में सातों द्वीपों तथा समुद्रों समेत सम्पूर्ण पृथिवी का एकच्छत्र स्वामी होता है॥ २१॥

त्रिसंध्यं यो जपेद् ब्रह्म कृत्वाष्टदलपङ्कजम्।
पौर्णमास्यां प्रतिपदि तस्य पुण्यफलं शृणु॥ २२॥

जो मनुष्य पूर्णिमा तथा प्रतिपदा तिथियों में अष्टदल कमल का निर्माण कर भगवान् ब्रह्मा के नाम का तीनों सन्ध्याओं में जप करता है उसके पुण्य-फल की कथा सुनो॥ २२॥

अनेनैव स देहेन ब्रह्मा संतिष्ठते क्षितौ।
पापहा सर्वमर्त्यानां दर्शनात् स्पर्शनादपि॥ २३॥

उसके लिये अधिक क्या कहा जाय, यही समझना चाहिये कि उसके इस शरीर से भगवान् ब्रह्मा ही पृथ्वी पर निवास कर रहे हैं। उसका दर्शन एवं स्पर्श ही सभी मनुष्यों के पापों को नाश करता है॥ २३॥

उद्धृत्य दिवि संस्थाप्य कुलानामेकविंशतिम्।
तैः कुलैः सहितो नित्यं मोदते भोगतो नृप॥ २४॥

हे राजन्! वह पुण्यशील मनुष्य अपनी इक्कीस पीढ़ियों को उद्धार कर स्वर्ग में प्रतिष्ठित करता है। अपने कुलपुरुषों के साथ वह पुण्यात्मा भूमिलोक में सर्वदा आनन्द का अनुभव करता है॥ २४॥

अप्येकवारं यो भक्त्या पूजयेत्पद्मसम्भवम्।
पद्मस्थं मूर्तिमन्तं वा ब्रह्मलोकं स गच्छति॥ २५॥

जो मनुष्य एक बार भी पद्म पर समासीन वा मूर्तिमान् पद्मयोनि भगवान् ब्रह्मा की भक्ति पूर्वक पूजा करता है वह ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है॥ २५॥

पुण्यक्षयात्क्षितिं प्राप्य भवेत्क्षितिपतिर्महान्।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो ब्राह्मणश्चापि जायते॥ २६॥

और पुण्य क्षय के बाद वहाँ से पृथ्वी लोक में महान् राजा के रूप में जन्म धारण करता है। समस्त वेद एवं वेदाङ्गों को पूर्व ज्ञान प्राप्त कर श्रेष्ठकुलीन ब्राह्मण के रूप में उत्पन्न होता है॥ २६॥

न तत्तपोभिरत्युग्रैर्न च सर्वैर्महामखैः।
गच्छेद् ब्रह्मपुरं दिव्यं मुक्त्या भक्तिपरात्मकान्॥ २७॥

भक्तिपूर्वक भगवान् ब्रह्मा की पूजा को छोड़कर न तो कठोर तपस्याओं से दिव्य ब्रह्मलोक की प्राप्ति हो सकती है और न समस्त महान् यज्ञों के अनुष्ठानों से॥ २७॥

मृद्दार्विष्टकशैलैर्वा यः कुर्याद् ब्रह्मणो गृहम्।
त्रिःसप्तकुलसंयुक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥ २८॥

जो मनुष्य मिट्टी, काष्ठ, ईंट अथवा पत्थरों से ब्रह्मा का मन्दिर बनवाता है, वह अपने इक्कीस कुल पुरुषों के साथ ब्रह्मलोक में पूजित होता है॥ २८॥

मृन्मयात् कोटिगुणितं फलं दार्विष्ट कामये।
इष्टकाद् द्विगुणं पुण्यं कृते शैलमये गृहे॥ २९॥

मिट्टी के मन्दिर से ईंट और काष्ठ का मन्दिर कोटिगुणित अधिक फलदायी होता है और ईंट के मन्दिर से द्विगुणित अधिक पुण्य पत्थर द्वारा बनवाने में होता है॥ २९॥

क्रीडमानोऽपि यः कुर्याच्छालां वै ब्रह्मणो नृप!
ब्रह्मलोके स लभते विमानं सर्वकामिकम्॥ ३०॥

हे नृप! जो मनुष्य खिलवाड़ में ही ब्रह्मा का आयतन बनवा देता है वह भी ब्रह्मलोक में सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाले विमान की प्राप्ति करता है॥ ३०॥

पुष्पमालापरिक्षिप्तं किङ्किणीजालभूषितम्।
दोलाविक्षेपसम्पन्नं घण्टाचामरभूषितम्॥ ३१॥

उसका वह सुन्दर विमान सुगन्धित पुष्पों की मालाओं से चारों ओर घिरा हुआ छोटी-छोटी किङ्किणियों से विभूषित झूलों एवं हिंडोले से संयुक्त घंटा तथा चामर से समन्वित रहता है॥ ३१॥

मुक्तादामवितानेन शोभितं सूर्यसुप्रभम्।
अप्सरोगणसङ्कीर्णं सर्वकामसुखप्रदम्॥ ३२॥

उसमें चारों ओर ऊपर मोतियों की लड़ियाँ झूलती रहती हैं उसकी शोभा सूर्य के समान तेजोमयी रहती है। अप्सराओं के समूह चारों ओर से उसमें आकीर्ण रहते हैं और वह सब प्रकार की कामनाएँ एवं समस्त सुख प्रदान करता है॥ ३२॥

तत्रोषित्वा महाभोगी क्रीडमानः सदा सुरैः।
पुनरागत्य लोकेऽस्मिन् राजा भवति धार्मिकः॥ ३३॥

पश्चात् उस ब्रह्मलोक में रहकर देवताओं के साथ क्रीड़ा करता हुआ वह महान् भोगी फिर इस लोक में आकर परम धार्मिक राजा होता है॥ ३३॥

पश्यन् परिहरञ्जन्तून् मृदुपूर्वं महीपते!
शनैः सम्मार्जनं कुर्वंश्चान्द्रायणफलं व्रजेत्॥ ३४॥

हे महीपति! ब्रह्मा के उस आयतन में जन्तुओं को देखकर उन्हें छोड़ते हुए मृदुता के साथ धीरे धीरे मार्जन करने से मनुष्य चान्द्रायण व्रत का पुण्य प्राप्त करता है॥ ३४॥

वस्त्रपूतेन तोयेन यः कुर्यादुपलेपनम्।
पश्यन् परिहरञ्जन्तूंश्चान्द्रायणफलं लभेत्॥ ३५॥

वस्त्र से पवित्र किये गये (छाने गये) जल द्वारा जो मनुष्य जन्तुओं को देखकर छोड़ते हुए उपलेपन करता है वह चान्द्रायण व्रत का पुण्य प्राप्त करता है॥ ३५॥

नैरन्तर्येण यः कुर्यात् पक्षं सम्मार्जनार्चनम्।
युगकोटिशतं साग्रं ब्रह्मलोके महीयते॥ ३६॥

जो मनुष्य एक पक्ष तक निरन्तर आयतन में मार्जन एवं अर्चन करता है वह शत कोटि युगपर्यन्त ब्रह्मलोक में पूजित होता है॥३६॥

तस्यान्ते स चतुर्वेदः सुरूपः प्रियदर्शनः।
आढ्यः सर्वगुणोपेतो राजा भवति धार्मिकः॥ ३७॥

उस अवधि के व्यतीत हो जाने के उपरान्त वह चारों वेदों का पारगामी विद्वान्, सुन्दर स्वरूपवान् प्रियदर्शी, धन-धान्यसम्पन्न, सर्वगुणान्वित एवं परम धार्मिक राजा होता है॥ ३७॥

कपटेनापि यः कुर्याद् ब्रह्मशालां सुमानद!
सम्मार्जनादि वै कर्म सोऽपि प्राप्नोति तत्फलम्॥ ३८॥

हे सुमानद! कपटपूर्वक भी जो व्यक्ति ब्रह्मा के आयतन का निर्माण करता है तथा उसमें सम्मार्जन एवं अर्चन आदि कर्म करता है वह भी उक्त फल की प्राप्ति करता है॥ ३८॥

तावद् भ्रमन्ति संसारे दुःखशोकभयप्लुताः।
न भवन्ति सुरश्रेष्ठे यावद्भक्ता महीपते॥ ३९॥

हे महीपति! लोग इस संसार में विविध प्रकार के दुःख शोक एवं भय में तभी तक फँसे रहते हैं जब तक सुरश्रेष्ठ में उनकी भक्ति नहीं हो जाती॥ ३९॥

समासक्तं यथा चित्तं जन्तोर्विषयगोचरे।
यद्येवं ब्रह्मणि न्यस्तं को न मुच्येत बन्धनात्॥ ४०॥

प्राणियों का चित्त जिस प्रकार बाह्य सांसारिक भोग विलासादि विषयों में समासक्त रहता है यदि उसी प्रकार ब्रह्मा में अनुरक्त हो जाय तो ऐसा कौन है जो बन्धनों से मुक्त न हो जाय॥ ४०॥

खण्डस्फुटितसंस्कारं शालायां यः करोति वै।
आरामावासवाद्येषु लभते मौक्तिकं फलम्॥ ४१॥

ब्रह्मा के टूटे-फूटे वा अपूर्ण आयतन का जो मनुष्य जीर्णोद्धार करा देता है अथवा पूर्ण करा देता है तथा उसमें वाटिका एवं विश्रामस्थल आदि का निर्माण करा देता है वह भी मोक्ष का फल प्राप्त करता है॥ ४१॥

नास्ति ब्रह्मसमो देवो नास्ति ब्रह्मसमो गुरुः।
नास्ति ब्रह्मसमं ज्ञानं नास्ति वेधःसमं तपः॥ ४२॥

ब्रह्मा के समान न तो कोई देव है न कोई गुरु है न कोई ज्ञान है न कोई तप है॥ ४२॥

प्रतिपद्यादिसर्वेषु दिवसेषूत्सवेषु च।
पर्वकालेषु पुण्येषु पौर्णमास्यां विशेषतः॥ ४३॥
शङ्खभेर्यादिनिर्घोषैर्महद्भिर्गेयसंयुतैः।
कुर्यान्नीराजनं देवे सुरज्येष्ठे चतुर्मुखे॥ ४४॥

प्रतिपदा आदि सभी तिथियों में सभी दिनों में उत्सव के दिन में, पर्व के दिन में अथवा किसी भी पुण्य अवसर पर, विशेषतया पूर्णिमा तिथि को शङ्ख भेरी आदि के माङ्गलिक शब्दों के बीच में सुमधुर संगीत एवं महान् समारोह कराते हुए सुरज्येष्ठ चतुर्मुख देव का नीराजन (पूजा) करना चाहिये॥ ४३-४४॥

यावत् पर्वाणि विधिना कुर्यान्नीराजनं नृप!
तावद्युगसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते॥ ४५॥

हे राजन्! मनुष्य इस प्रकार जितने पर्वों में विधिपूर्वक नीराजन करता है उतने सहस्र युगों तक ब्रह्मलोक में पूजित होता है॥ ४५॥

स्नानकाले त्रिसन्ध्यं तु यः कुर्यान्नृत्यवादनम्।
गीतं वा मुखवाद्यं वा तस्य पुण्यफलं शृणु॥ ४६॥

स्नान के समय तीनों सन्ध्याओं में जो मनुष्य ब्रह्मा के मन्दिर में नृत्य एवं वाद्य का समारोह रचता है, गीत गाता है अथवा केवल मुख का वाद्य बजाता है उसका पुण्यफल सुनो ॥ ४६ ॥

यावन्त्यह्नि कुरुते गेयनृत्यादिवादनम्।
तावद्युगसहस्राणि ब्रह्मलोके महीयते ॥ ४७ ॥

जितने दिनों तक वह गायन, नृत्य तथा वाद्य का समारोह करता है उतने ही सहस्र युगों तक ब्रह्मलोक में पूजित होता है ॥४७॥

कपिलापञ्चगव्येन कुशवारियुतेन च।
स्नापयेन्मन्त्रपूतेन ब्राह्मं स्नानं हि तत्स्मृतम् ॥ ४८ ॥

कपिला गौ के पञ्चगव्य तथा कुशमिश्रित जल से जो मंत्रों द्वारा अभिमन्त्रित कर स्नान कराया जाता है उसे 'ब्रह्मस्नान' कहा जाता है ॥ ४८ ॥

कपिलापञ्चगव्येन दधिक्षीरघृतेन च।
स्नानं शतगुणं ज्ञेयमितरेषां नराधिप ॥ ४९ ॥

हे नराधिप! कपिला के पञ्चगव्य तथा दही, क्षीर और घृत से स्नान कराने का पुण्य अन्य की अपेक्षा शतगुणा अधिक है ॥ ४९ ॥

देवाग्निकार्यमुद्दिश्य कपिलामाहरेत् सदा।
ब्रह्मक्षत्रविशश्चैव न शूद्रस्तु कदाचन ॥ ५० ॥

देवता तथा अग्नि कार्य के उद्देश्य से ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य को सर्वदा कपिला गौ का ही आहरण (प्रयोग) करना चाहिये। शूद्र को कपिला का आहरण कभी नहीं करना चाहिये ॥ ५० ॥

कापिलं यः पिबेच्छूद्रो देवकार्यार्थनिर्मितम्।
स पच्येत महाघोरे सुचिरं नरकार्णवे ॥ ५१ ॥

देव कार्यों के लिये विहित कपिला गौ के दूध को जो शूद्र पीता है वह महाघोर नरक समुद्र में चिरकाल तक सन्तप्त होता है ॥ ५१ ॥

वर्षकोटिसहस्रैस्तु यत् पापं समुपार्जितम्।
सुरज्येष्ठघृताभ्यङ्गाद्दहेत् सर्वं न संशयः ॥ ५२ ॥

सहस्रकोटि वर्षों में मनुष्यों द्वारा जो पाप कर्म किये हुए रहते हैं, वे सब सुरज्येष्ठ ब्रह्मा को घृतस्नान कराने से निस्सन्देह नष्ट हो जाते हैं॥ ५२॥

कल्पकोटिसहस्रैस्तु यत् पापं समुपार्जितम्।
पितामहघृतस्नानं दहत्यग्निरिवेन्धनम्॥ ५३॥

यही नहीं, सहस्रों कोटि कल्पों में जो पाप किये गये रहते हैं उन्हें भी पितामह का घृतस्नान इस प्रकार जला देता है जिस प्रकार अग्नि इन्धन को॥ ५३॥

घृतस्नानं प्रतिपदि सकृत्कृत्वा तु कञ्जजम्।
कुलैकविंशमुत्तार्य विष्णुलोके महीयते॥ ५४॥

प्रतिपदा तिथि का पङ्कजोद्भव ब्रह्मा जी को केवल एक बार घृत द्वारा स्नान कराने से मनुष्य अपनी इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार कर विष्णुलोक में पूजनीय होता है॥ ५४॥

अयुतं यो गवां दद्याद्भक्त्या वै वेदपारगे।
वस्त्रहेमादियुक्तानां क्षीरस्नानेन तत्फलम्॥ ५५॥

वेदज्ञ ब्राह्मणों को दस सहस्र वस्त्र सुवर्णादि से अलङ्कृत गौएँ भक्तिपूर्वक प्रदान करने से मनुष्य जो पुण्य प्राप्त करता है वह (ब्रह्मा को) क्षीरस्नान कराने से प्राप्त होता है॥ ५५॥

सकृदाज्येन पयसा विरिञ्चिं स्नपयेत्तु यः।
गाङ्गेयेन स यानेन याति ब्रह्मसलोकताम्॥ ५६॥

जो मनुष्य घृत एवं क्षीर द्वारा ब्रह्मा को केवल एकबार स्नान कराता है वह गांगेय यान द्वारा ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है॥ ५६॥

स्नाप्य दध्ना सकृद्वीर कञ्जजं विष्णुमाप्नुयात्।
मधुना स्नपयित्वा तु वीरलोके महीयते॥ ५७॥

हे वीर! पङ्कजोद्भव ब्रह्मा जी को केवल एक बार दही द्वारा स्नान कराने से विष्णु (लोक) को प्राप्त करता है और मधु द्वारा स्नान कराकर वीरलोक में भूषित होता है॥ ५७॥

स्नानमिक्षुरसेनेह यो विरिञ्चेः समाचरेत्।
स याति लोकं सवितुस्तेजसा भासयन्नभः॥ ५८॥

जो ईख के रस द्वारा ब्रह्मा को स्नान कराता है वह अपने देदीप्यमान तेज से आकाशमण्डल को भासित करते हुए सूर्य के लोक को प्राप्त करता है ॥ ५८ ॥

शुद्धोदकेन यो भक्त्या स्नपयेत् पद्मसम्भवम्।
उत्सृज्य पापकलिलं स यात्येव सलोकताम् ॥ ५९ ॥

इसी प्रकार केवल शुद्ध जल से जो मनुष्य पङ्कजोद्भव ब्रह्मा जी को भक्तिपूर्वक स्नान कराता है वह पापपङ्क से मुक्त होकर ब्रह्मलोक को अवश्य प्राप्त करता है ॥ ५९ ॥

वस्त्रपूतेन तोयेन स्नपयेद्यः सकृद्विभुम्।
स सर्वकालं तृप्तात्मा लोकवश्यत्वमाप्नुयात् ॥ ६० ॥

जो वस्त्र द्वारा शुद्ध किये गये जल से परमैश्वर्यशाली भगवान् ब्रह्मा को स्नान कराता है वह सर्वदा सन्तुष्टि लाभ करते हुए लोक को वश में करने की क्षमता प्राप्त करता है ॥ ६० ॥

सर्वौषधीभिर्यो भक्त्या स्नपयेत्पद्मसम्भवम्।
काञ्चनेन विमानेन ब्रह्मलोके महीयते ॥ ६१ ॥

सम्पूर्ण औषधियों द्वारा जो मनुष्य भक्तिपूर्वक पद्मयोनि ब्रह्मा को स्नान कराता है वह सुवर्णमय विमान द्वारा ब्रह्मलोक में पूजित होता है ॥ ६१ ॥

गन्धचन्दनतोयेन स्नपयेद्योऽम्बुजोद्भवम्।
रुद्रलोकमवाप्नोति तेजसा हेमसन्निभः ॥ ६२ ॥

सुगन्धित द्रव्य एवं चन्दन के जल द्वारा जो पद्मज ब्रह्मा को भक्तिपूर्वक स्नान कराता है वह अपनी सुवर्ण के समान निर्मल कान्ति से शोभासम्पन्न होकर रुद्रलोक को प्राप्त करता है ॥ ६२ ॥

पाटलोत्पलपद्मानि करवीराणि सर्वदा।
स्नानकाले प्रयोज्यानि स्थिराणि सुरभीणि च ॥ ६३ ॥
एषामेकतमं स्नानं भक्त्या कृत्वा तु वेधसि।
विधूय पापकलिलं विधिलोके महीयते ॥ ६४ ॥

ब्रह्मा के स्नान के अवसर पर कमल, पद्म, करवीर आदि स्थिर सुगन्धि वाले पुष्पों का सर्वदा प्रयोग करना चाहिये। ब्रह्मदेव

के समक्ष उपर्युक्त सामग्रियों को रखकर जो मनुष्य इनमें से किसी एक से भक्तिपूर्वक स्नान कराता है, तो वह अपने सम्पूर्ण पाप-पङ्कों से छुटकारा प्राप्त कर ब्रह्मलोक में पूजित होता है॥ ६३-६४॥

कर्पूरागरुतोयेन स्नपयेद्यस्तु कञ्जजम्।
सर्वपापविशुद्धात्मा ब्रह्मलोके महीयते॥ ६५॥

जो मनुष्य कपूर अथवा अगर मिश्रित जल द्वारा पङ्कजोद्भव को स्नान कराता है वह सम्पूर्ण पापों से मुक्त एवं विशुद्धात्मा होकर ब्रह्मलोक में पूजित होता है॥ ६५॥

गायत्रीशतजप्तेन विमलेनाम्भसा विभुम्।
स्नापयित्वा सकृद्भक्त्या ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥ ६६॥

सौ बार गायत्रीमन्त्र से विमल जल द्वारा सर्वैश्वर्यशाली भगवान् ब्रह्मा को भक्तिपूर्वक एक बार स्नान कराने से ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है॥ ६६॥

विभुं शीताम्बुना स्नाप्य धारोष्णपयसा ततः।
ततः पश्चाद् घृतस्नानं कृत्वा पापैर्विमुच्यते॥ ६७॥

विभु ब्रह्मा को सर्वप्रथम शीतल जल से, फिर धारोष्ण दुग्ध से, तदनन्तर घृत से स्नान कराने वाला भक्त सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है॥ ६७॥

एतत्स्नानत्रयं कृत्वा पूजयित्वा तु भक्तितः।
अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥ ६८॥

उन उपर्युक्त तीनों स्नानों को कराकर फिर भक्तिपूर्वक पूजा करके मनुष्य सहस्र अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है॥ ६८॥

मृत्कुम्भैस्ताम्रजैः कुम्भैः स्नानं शतगुणं भवेत्।
रौप्यैर्लक्षोत्तरं प्रोक्तं हैमैः कोटिगुणं भवेत्॥ ६९॥

मिट्टी के कुम्भों की अपेक्षा ताम्र के कुम्भों से स्नान कराने पर शतगुणा अधिक पुण्यफल प्राप्त होता है। चाँदी के कुम्भ से लक्षगुणित तथा सुवर्ण के कुम्भों से कोटिगुणित फल प्राप्त होता है॥ ६९॥

ब्रह्मणो दर्शनं पुण्यं दर्शनात् स्पर्शनं परम्।
स्पर्शनादर्चनं श्रेष्ठं घृतस्नानमतः परम्॥ ७०॥

भगवान् ब्रह्मा का यों तो दर्शन ही परमपुण्यप्रद है; किन्तु दर्शन से अधिक पुण्य स्पर्श करने का है। उस स्पर्श से भी अधिक पुण्य पूजन करने का है और उससे भी अधिक पुण्यप्रद घृत-स्नान कहा गया है ॥ ७० ॥

वाचिकं मानसं पापं घृतस्नानेन देहिनाम्।
क्षिणुते पद्मजो यस्मात्तस्मात्स्नानं समाचरेत्॥ ७१ ॥

शरीरधारियों के वाचिक एवं मानसिक पापों को भगवान् पद्मसम्भव घृतस्नान से नष्ट कर देते हैं। इसीलिये लोग उनके स्नान की महत्ता बतलाते हैं ॥ ७१ ॥

स्नपयित्वार्चयेद्भक्त्या यथा तच्छृणु भारत!
शुचिवस्त्रधरः स्नातः कृतन्यासश्च भारत॥ ७२ ॥
चतुर्हस्तं लिखेत् पद्मं चतुर्भागविभागितम्।
मध्ये तस्य लिखेच्चक्रं दलैर्द्वादशमिश्रितम्॥ ७३ ॥

हे भरतवंशी! विधिपूर्वक स्नान कराने के बाद जिस प्रकार ब्रह्मा की भक्तिपूर्वक पूजा की जाती है उसे बता रहा हूँ, सुनिये! हे भरतकुलोत्पन्न! सर्वप्रथम स्नानकर, पवित्र वस्त्र धारण कर, न्यास कर, चार हाथ प्रमाण में कमल का निर्माण करे, जो चार भागों में विभक्त हो। उस कमल के मध्य भाग में बारह दलों से संयुक्त एक चक्र का विन्यास करे॥ ७२-७३ ॥

सरोजानि ततो न्यस्य अक्षराणि समन्ततः।
अक्षरं विहितं चान्यत् पत्रभागे प्रकीर्तितम्॥ ७४॥

उसके चारों ओर निम्नलिखित सरोज नामक अक्षरों की रचना करे। पत्र भाग में जिन अक्षरों का विन्यास करना चाहिये वे ये कहे गये हैं॥ ७४॥

नानावर्णकसंयोगाल्लिखेच्चैवानुपूर्वशः ।
कृष्णोत्कटं तु मध्यं स्यात्पीतरक्तं तथा परम्॥ ७५ ॥

उन्हें क्रमपूर्वक विविध प्रकार के रङ्गों द्वारा लिखना चाहिये, उनमें से जो बहुत काले रङ्ग हों उनका प्रयोग मध्य भाग में होना चाहिये। पीले तथा लाल रङ्ग का प्रयोग उस मध्य भाग के पश्चात् करना चाहिये॥ ७५ ॥

सितं शुद्धं तु कर्त्तव्यं मध्यभागे तु वर्तुलम्।
प्रभाकुण्डलकैबाह्यैर्वेष्टयेच्चक्रनायकम् ॥ ७६ ॥

मध्य भाग में वर्तुलाकार श्वेत शुभ्र रङ्ग का प्रयोग करना चाहिये। बाहर से प्रभावान् कुण्डलों से उस चक्र को अच्छी तरह आवेष्टित कर देना चाहिये॥ ७६ ॥

एवमालिख्य यत्नेन मूलमन्त्रं ततो न्यसेत्।
मूर्ध्नः पादतलं यावत् प्रणवं विन्यसेद्बुधः॥ ७७॥

इस प्रकार यत्नपूर्वक उक्त चक्र का चित्र अङ्कित कर मूल मन्त्र का न्यास करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष मस्तक से लेकर पादतल तक प्रणवाक्षरों का विन्यास करे॥ ७७॥

नादरूपं न्यसेत्तावद्यावच्छब्दस्य शून्यता।
तत्कारं विन्यसेन्मूर्ध्नि सकारं मुखमण्डले॥ ७८ ॥

तब तक नाद रूप वर्णों का न्यास करे जब तक शब्दों की शून्यता हो, मस्तक भाग में 'तत्' कार का न्यास करे। सकार का न्यास मुखमण्डल पर करे॥ ७८ ॥

विकारं कण्ठदेशे तु तुकारं सर्वसंधिषु।
वकारं हृदि मध्ये तु रेकारं पार्श्वयोर्द्वयोः॥ ७९ ॥

कण्ठ प्रदेश में 'वि' कार का न्यास किया जाता है। सर्वसन्धि-प्रदेशों अथवा अङ्गसन्धिप्रदेशों में 'तु' कार का न्यास करना चाहिये। हृदय के मध्य में 'व' कार का न्यास किया जाता है। दोनों पार्श्वप्रदेशों में 'रे' कार का न्यास करना चाहिये॥ ७९ ॥

णकारं दक्षिणे कुक्षौ यकारं वामसंज्ञके।
भकारं कटिनाभिस्थं र्गोकारं जानुपर्वसु॥ ८० ॥

दाहिनी कुक्षि में 'ण'कार का न्यास होता है। इसी प्रकार वाम कुक्षि में 'य'कार का न्यास करके कटि एवं नाभि प्रदेश में 'भ' कार का न्यास करना चाहिये। दोनों घुटनों के पोरों पर 'र्गो'कार का न्यास करना चाहिये॥ ८० ॥

देकारं जङ्घयोर्न्यस्य वकारं पादपद्मयोः।
स्यकारमङ्गुष्ठयोर्न्यस्य धीकारं चोरसि न्यसेत्॥ ८१ ॥

इसी प्रकार दोनों जङ्घाओं में 'दे'कार का न्यास कर दोनों चरण कमलों में 'व' कार का न्यास किया जाना चाहिये। दोनों अँगूठों में 'स्य' कार का न्यास कर, वक्षस्थल में 'धी' कार का न्यास करना चाहिये॥ ८१॥

मकारं जानुदेशे तु हिकारं गुह्यमाश्रितम्।
धिकारं हृदये न्यस्य योकारं चौष्ठयोर्न्यसेत्॥ ८२॥

जानु प्रदेश में 'म' कार का न्यास कर गुह्य प्रदेश में 'हि' कार का न्यास करना चाहिये। इसी प्रकार हृदय में 'धि' कार का न्यास कर, दोनों ओठों पर 'यो' कार का न्यास करना चाहिये॥ ८२॥

नकारं नासिकाग्रे तु प्रकारं नेत्रमाश्रितम्।
चोकारं तु भ्रुवोर्मध्ये दकारं प्राणमाश्रितम्॥ ८३॥

नासिका के अग्रभाग में 'न' कार का न्यास कर नेत्रों में 'प्र' कार का न्यास करना चाहिये। दोनों भौहों के मध्य भाग में 'चो' कार का न्यास कर, प्राण स्थान पर 'दे'कार का न्यास करना चाहिये॥ ८३॥

याकारं विन्यसेन्मूर्ध्नि तकारं केशमाश्रितम्।
न्यासं कृत्वात्मनो देहे देवे कुर्यात्तथा नृप॥
सर्वोपचारसम्पन्नं कृत्वा सम्यङ् निरीक्षयेत्॥ ८४॥

पुनः मूर्धाभाग में 'या' कार का न्यास कर केशों में 'त' कार का न्यास करना चाहिये। हे राजन्! इस प्रकार अपने शरीर में न्यास कर देव के शरीर में भी उक्त न्यास करना चाहिये और अन्त में समस्त प्रसाधनों से भलीभाँति सुशोभित कर निरीक्षण करना चाहिये॥ ८४॥

कुंकुमागुरुकर्पूरचन्दनेन विमिश्रितम्।
गन्धतोयमुपस्कृत्य गायत्र्या प्रणवेन च।
प्रोक्षयेत् सर्वद्रव्याणि पश्चादर्चनमाचरेत्॥ ८५॥

कुंकुम, अगर, कपूर तथा चंदन से विमिश्रित सुगन्धित जल से प्रणव सहित गायत्रीमंत्र का उच्चारण कर समस्त द्रव्यों का प्रोक्षण (अभिषेचन) करना चाहिये। तदनन्तर पूजा करनी चाहिये॥ ८५॥

चक्रग्रन्थिषु सर्वासु प्रणवं विनिवेशयेत्।
भूयः प्लुतं समुच्चार्यं प्रणवं सर्वतोमुखम्॥ ८६ ॥
विन्यसेत् पद्ममध्ये तु पीठनिष्पत्तिहेतवे।
आसने पृथिवी ज्ञेया सर्वसत्त्वधरा मता॥ ८७॥

लिखित चक्र की सब ग्रन्थियों में प्रणव का न्यास करना चाहिये। फिर प्लुत (त्रिमात्रिक आयास एवं समय में) स्वर में उच्चारण कर सर्वतोमुखी प्रणव का पद्म के मध्य भाग में पीठसिद्धि के लिये न्यास करना चाहिये। आसन के रूप में पृथ्वी को भी जानना चाहिये। जो समस्त जीवों को धारण करने वाली मानी गयी है॥ ८६-८७॥

ह्रस्वोङ्कारे मता सा तु दीर्घोङ्कारे तु देवराट्।
प्लुतस्तु व्यापयेद्भावं मोक्षदं चामृतात्मकम्॥ ८८॥

पृथ्वी को ह्रस्व ओंकार में माना गया है, दीर्घ ओंकार में देवराज इन्द्र की सत्ता मानी गयी है। प्लुत ओंकार तो मोक्षप्रद अमृतात्मक भावों में व्याप्त माना गया है॥ ८॥

यत्नस्थो न निवर्तेत योगी प्राणपरायणः।
आवाहनं ततः कुर्यादक्षरेण परेण तु॥ ८९॥

प्राणवायु को वश में करने वाले योगी को यत्नपूर्वक साधनों में निरत रहकर निवृत्त न होना चाहिये। तदनन्तर परम अक्षर (ॐ)का उच्चारण करते हुए देव का आवाहन करना चाहिये॥ ८९॥

आवाह्य तेजोरूपं तु न्यसेन्मन्त्रवरांस्ततः।
ततो विभावयेद्देवं पद्मस्थं चतुराननम्॥ ९०॥

इस प्रकार तेजोरूप देव का आवाहन करने के बाद श्रेष्ठ मन्त्रों का न्यास करना चाहिये। तदनन्तर पद्मदल पर अवस्थित उन भगवान् चतुरानन का ध्यान करे॥ ९०॥

स्त्रष्टारं सर्वजगतां विष्णुरुद्रविधानगम्।
सम्भाव्य विधिवद्भक्त्या पश्चाच्चार्चनमाचरेत्॥ ९१॥

जो सम्पूर्ण चराचर जगत् के स्रष्टा एवं विष्णु तथा रुद्र के विधान को अतिक्रान्त करने वाले हैं। इस प्रकार भक्ति के साथ

विधिपूर्वक भगवान् को सम्भावित करने के बाद उनकी पूजा करे॥ ९१॥

गन्धपुष्पादिसम्भारान् क्रमात्सर्वान् प्रकल्पयेत्।
गायत्रीमुच्चरन्मन्त्रं सर्वकर्माणि कारयेत्॥ ९२॥

सुगन्धित द्रव्य पुष्पमाला आदि समस्त पूजा की सामग्रियों को क्रमशः एकत्र करके ब्रह्मदेव की पूजा करनी चाहिए। उस समय सभी कार्यों का आरम्भ गायत्री मंत्र का उच्चारण करते हुए करना चाहिये॥ ९२॥

पुष्पं धूपं तथा दीपं नैवेद्यं सुमनोहरम्।
खण्डलड्डुकश्रीवेष्टकासाराशोकवर्तिकाः ॥ ९३॥
स्वस्तिकोल्लोपिकादुग्धतिलावेष्टतिलाढिकाः।
फलानि चैव पक्कानि लग्नखण्डगुडानि च॥ ९४॥
अन्यांश्च विविधान्दद्यात्पूपानि विविधानि च।
एवमादीनि सर्वाणि दापयेच्छक्तितो नृप॥ ९५॥

पूजा के द्रव्य मुख्यतया ये हैं— पुष्प, धूप, दीप, मनोहारि नैवेद्य श्रीखण्ड, लड्डू, श्री वेष्टकासार, अशोकवर्तिका, स्वस्तिकोल्लोपिका दुग्ध, तिल मिश्रित मिष्टान्न, पके हुए विविध फल, खाँड़ और गुड़ से बने हुए विविध पदार्थ। इनके अतिरिक्त अन्यान्य विविध प्रकार के फलों का दान करना चाहिये। विविध प्रकार के बने हुए पूए भी हों। हे राजन्! अपनी शक्ति भर सभी पदार्थों का दान करना चाहिए ॥ ९३-९५॥

मूलमन्त्रेण देवस्य ततो देहं विभावयेत्।
पूजयेच्चापि विधिना येन तं ते ब्रवीम्यहम्॥ ९६॥

तदनन्तर मूल मन्त्र से देव के शरीर का विधिवत् ध्यान करना चाहिये। उस समय जिस विधि से पूजा की जानी चाहिये उसे मैं तुम्हें बता रहा हूँ॥ ९६॥

प्राणायामत्रयं कृत्वा देहसंशोधनाय वै।
आवाहयेत्ततोऽनन्तं धारयन्तं वचः सदा॥ ९७॥

शरीर शुद्धि के लिये तीन बार प्राणायाम करके सर्वदा वेदों को धारण करने वाले अनन्त देव का ध्यान करना चाहिये॥ ९७॥

ध्यात्वानन्तं ततो रुद्रं पद्मकिञ्जल्कमध्यगम्।
ध्यायेद्विष्णुं ततो देवं न्यसेत् पद्मोदरोद्भवम्॥ ९८॥

अनन्त का ध्यान करने के अनन्तर पद्म के केशर में प्रतिष्ठित रुद्र का ध्यान करना चाहिए, तत्पश्चात् भगवान् विष्णु का ध्यान कर ब्रह्म देव का न्यास करना चाहिये॥ ९८॥

एवं त्रिदेवतारूढं पद्ममध्येऽम्बुजोद्भवम्।
पूजयेन्मूलमन्त्रेण पद्मोदरभवं नृप॥ ९९॥

हे राजन्! इस प्रकार तीनों देवों से आरूढ़ पङ्कज के मध्य भाग में प्रतिष्ठित ब्रह्मा की मूलमन्त्र द्वारा पूजा करनी चाहिये॥ ९९॥

ऋग्वेदं तु यजुर्वेदं सामवेदं च पूजयेत्।
ज्ञानवैराग्यमैश्वर्यं धर्मं सम्पूजयेद् बुधः॥ १००॥

हे राजन्! तदनन्तर ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य एवं धर्म का पूजन करके ऋग्वेद यजुर्वेद एवं सामवेद की पूजा बुद्धिमान् पुरुष को करनी चाहिये॥ १००॥

ईशानादिक्रमाद्राजन् विदिशासु समन्ततः।
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्द एव च॥ १०१॥
ज्योतिषं च महाबाहो उपवेदाश्च कृत्स्नशः।
इतिहासपुराणानि यथायोग्यं यथाक्रमम्॥ १०२॥

हे राजन्! ईशान कोण से प्रारम्भ कर सभी कोणों में सभी ओर शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष एवं अन्यान्य उपवेदों की एवं इतिहास पुराणादि की यथायोग्य क्रमशः पूजा कर्रनी चाहिये॥ १०१-१०२॥

शिक्षा कल्पो व्याकरणं देवस्य पुरतः सदा।
कल्पादयस्ततश्चान्ये दिशासु विदिशासु च॥ १०३॥

इन सबों में शिक्षा, कल्प एवं व्याकरण इन तीनों को देव के सम्मुख रखना चाहिये, अन्य कल्पादिकों को अन्यान्य दिशाओं एवं विदिशाओं में निर्दिष्ट करना चाहिये॥ १०३॥

महाव्याहृतयः सर्वाः प्रणवेन समन्विताः।
पूर्वादिक्रमयोगेन पूजयेद्विधिना नृप॥ १०४॥

हे राजन्! प्रणव के साथ सम्पूर्ण महाव्याहृतियों की पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर क्रमशः पूजा करनी चाहिये॥ १०४॥

शक्तयो ब्रह्मणस्त्वेता लोकरूपा व्यवस्थिताः।
पूजनीयाः प्रयत्नेन मन्त्ररूपाः स्थिताः स्वयम्॥ १०५॥

ये महाव्याहृतियाँ ब्रह्मा द्वारा व्यवस्थित लोक स्वरूपिणी शक्तियाँ हैं। उनकी प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिए, वे मन्त्र रूप में स्थित ब्रह्मा की मूर्तिमान् शक्तियाँ हैं॥ १०५॥

अरकान्तरसंस्थांश्च षट् समुद्रान् समर्चयेत्।
नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव राशयश्च विशेषतः॥
पूज्याः सर्वे यथान्यायं सुराग्रेषु व्यवस्थिताः॥ १०६॥

उस चक्र के मध्य में न्यस्त अरों के अन्तर्भाग में प्रतिष्ठित छहों समुद्रों की भी विधिवत् पूजा करनी चाहिए। देवों के अग्र भाग में व्यवंस्थित, नक्षत्रों, ग्रहों एवं विशेषतया राशियों की भी यथाविधि पूजा करनी चाहिये॥ १०६॥

नागाश्च गरुडश्चैव पूजनीयास्तथाग्रतः।
देवता ऋषयश्चैव सहिताः कुलपर्वताः॥
तत्तेजोनिलयाः सर्वे पूजनीयाः प्रयत्नतः॥ १०७॥

उनके अग्रभाग में व्यवस्थित नागों की तथा गरुड़ की भी पूजा करनी चाहिये। जितने भी देवता एवं ऋषियों के समेत कुल पर्वत गण हैं वे सब भी उस (अनन्त) तेजोनिलय (निवास) स्वरूप हैं, अतः उनकी भी प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये॥ १०७॥

आचम्य विधिवत् पूर्वं मन्त्रपूतेन वारिणा।
हृदयादीन्न्यसेदङ्गान् हृदयादिषु कृत्स्नशः॥ १०८॥

मन्त्र से पवित्र जल द्वारा विधिपूर्वक आचमन करके हृदय आंदि समस्त अङ्गों में हृदयादि का न्यास करना चाहिए॥ १०८॥

शिखा नेत्रं तथा वर्म अस्त्रं च भरतर्षभ।
महेन्द्रादिदिशश्चैताः पूजयेद्विधिवन्नृप॥ १०९॥

हे राजन्! तदनन्तर सिर, नेत्र, चर्म तथा अस्त्र का न्यास कर पूर्व आदि दिशाओं की पूजा करनी चाहिये॥ १०९॥

हृदयं पुरतः पूज्यं शिरो देवस्य पृष्ठतः।
पूर्वं सम्पूजयेद्देवं मूलमन्त्रेण कृत्स्नशः॥ ११०॥

देव के हृदय भाग की आगे से पूजा करनी चाहिये और शिरोभाग की पीछे से। मूल मन्त्र द्वारा सम्पूर्ण अङ्गों में देव की पूजा करनी चाहिये॥ ११०॥

विसर्जयेद्दर्शयित्वा मुद्रां तु भरतर्षभ!
अङ्कुशं नरशार्दूल ह्याह्वाने कञ्जमादिशेत्॥ १११॥

भरतवंशियों में श्रेष्ठ! तदनन्तर विसर्जन मुद्रा दिखा कर विसर्जन करना चाहिये। नरशार्दूल! ब्रह्मा के आवाहन में अंकुश तथा कमलमुद्रा का आदेश किया गया है॥ १११॥

यस्त्वेवं पूजयेद्देवं प्रतिपन्नित्यमेव च।
उपोष्य पञ्चदश्यां तु स याति परमं पदम्॥ ११२॥

जो मनुष्य पूर्णिमा तिथि को उपवास रखकर सर्वदा प्रतिपदा तिथि को उक्त प्रकार से देव की पूजा करता है वह परम पद को प्राप्त करता है॥ ११२॥

आपो हिष्ठेति मन्त्रोऽयं हृदयं परिकीर्तितम्।
ऋतं सत्यं शिखा प्रोक्ता उदुत्यं नेत्रमादिशेत्॥ ११३॥

'आपोहिष्ठा'— यह मंत्र हृदय न्यास के लिये कहा गया है। 'ऋतं च सत्यं च.............इत्यादि' मन्त्र शिखा के लिये प्रयुक्त है। 'उदुत्यं......इत्यादि' मंत्र नेत्र के लिये बतलाया गया है॥ ११३॥

चित्रं देवानां मस्तकमिति सर्वलोकेषु विश्रुतम्।
वर्मणा ते च्छादयामि कवचं समुदाहृतम्॥ ११४॥

'चित्रं देवानाम्'.......इत्यादि मंत्र मस्तक के लिंये सब लोकों में प्रसिद्ध माना गया है। 'वर्मणा तेच्छादयामि......इत्यादि मंत्र कवच के लिए बताया गया है॥ ११४॥

भूर्भुवः स्वरिति तथा शिरसे परिकीर्तितम्।
गायत्रीमूलमन्त्रस्तु साधकः सर्वकर्मणाम्॥ ११५॥

'भूर्भुवः स्वः' यह मंत्र सिर के लिए कहा गया है। गायत्री मन्त्र सभी कर्मों में सिद्धि का प्रदाता कहा गया है॥ ११५॥

गायत्र्या पूजयेद्देवमोङ्कारेणाभिमंत्रितम्।
प्रणवेनापरान् सर्वानृग्वेदादीन् प्रपूजयेत्॥ ११६॥

ॐकार से संयुक्त गायत्री मन्त्र द्वारा ही देव की पूजा करनी चाहिये। अन्य ऋग्वेदादि को केवल प्रणव द्वारा पूजित करना चाहिये॥ ११६॥

आह्वाने पूजने वीर विसर्गे ब्रह्मणस्तथा।
गायत्री परमो मन्त्रो वेदमाता विभाविनी॥ ११७॥

हे वीर! देव के आवाहन, पूजन एवं विसर्जन में सर्वत्र वेदमाता परम पुण्यप्रदायिनी गायत्री ही प्रमुख मानी गयी हैं॥ ११७॥

गायत्र्यक्षरतत्त्वैस्तु पूजयेद्यस्तु देवताम्।
स गच्छेद् ब्रह्मणः स्थानं दुर्लभं यद् दुरासदम्॥ ११८॥

गायत्री के अक्षर तत्त्वों से जो मनुष्य देव की पूजा करता है, वह ब्रह्मा के उस श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त करता है जो परम दुर्लभ एवं दुष्प्राप कहा जाता है॥ ११८॥

भविष्यपुराण के अन्तर्गत ब्रह्मा की
पूजाविधि सम्पूर्ण॥



ब्रह्मसम्बन्धि व्रतम्

सुमन्तु

पौर्णमास्युपवासं तु कृत्वा भक्त्या नराधिप!
अनेन विधिना यस्तु विरञ्चिं पूजयेन्नरः।
प्रतिपद्यां महाबाहो स गच्छेद् ब्रह्मणः पदम्॥ १ ॥

सुमन्तु बोले— नराधिप! जो मनुष्य उक्त विधि से भक्तिपूर्वक पूर्णिमा तिथि को उपवास रखकर प्रतिपदा तिथि को ब्रह्मा की पूजा करता है, हे महाबाहु! वह ब्रह्मपद को प्राप्त करता है॥ १ ॥

ऋग्भिर्विशेषतो देवी विरिञ्चेर्वास्तुदेवताः॥ २ ॥

ऋचाओं द्वारा विरिञ्चि की देवी की पूजा करनी चाहिये जो उनकी वास्तु देवता मानी गयी हैं॥ २ ॥

कार्त्तिके मासि देवस्य रथयात्रा प्रकीर्तिता।
यां कृत्वा मानवो भक्त्या याति ब्रह्मसलोकताम्॥ ३ ॥

कार्तिक मास में देव की रथयात्रा की प्रशंसा की गयी हैं। जिसको सविधि सम्पन्न करने वाला भक्तिमान् पुरुष ब्रह्मा की सलोकता प्राप्त करता है॥ ३ ॥

कार्तिके मासि राजेन्द्र पौर्णमास्यां चतुर्मुखम्।
मार्गेण चर्मणा सार्धं सावित्र्या च परन्तप॥ ४॥
भ्रामयेन्नगरं सर्वं नानावाद्यैः समन्वितम्।
स्थापयेद् भ्रामयित्वा तु सलोकं नगरं नृप॥ ५॥

हे राजेन्द्र! कार्तिक मास की पूर्णिमा तिथि को सावित्री के साथ मृगचर्म पर भगवान् ब्रह्मा को स्थापित कर अनेक प्रकार के वाद्यों के साथ-साथ रथ को नगर में सर्वत्र घुमावे। हे राजन्! इस तरह नगर में जनसम्मर्द (जलूस) के साथ सर्वत्र घुमा लेने के बाद रथ को एक स्थल पर स्थापित कर दे॥ ४-५ ॥

ब्राह्मणं भोजयित्वांग्रे शाण्डिलेयं प्रपूज्य च।
आरोपयेद्रथे देवं पुण्यवादित्रनिस्वनैः ॥ ६ ॥

आगे शाण्डिलेय ब्राह्मण को विधिवत् पूजित कर भोजन करवाये। तदनन्तर उस शाण्डिलीपुत्र ब्राह्मण को विधिपूर्वक पूजित कर रथ के अग्रभाग में बैठावे। उसके पूर्व ही पुण्यप्रद वाद्य एवं गीतादि के साथ देव को रथ पर स्थापित करे॥ ६ ॥

रथाग्रे शाण्डिलीपुत्रं पूजयित्वा विधानतः।
ब्राह्मणान् वाचयित्वा च कृत्वा पुण्याहमङ्गलम् ॥ ७ ॥
देवमारोपयित्वा तु रथे कुर्यात्प्रजागरम्।
नानाविधैः प्रेक्षणकैर्ब्रह्मघोषैश्च पुष्कलैः ॥ ८ ॥
कृत्वा प्रजागरं ह्येवं प्रभाते ब्राह्मणं नृप!
भोजयित्वा यथाशक्त्या भक्ष्यभोज्यैरनकेशः ॥ ९ ॥

रथ के अग्रभाग में विधानपूर्वक उस शाण्डिलीपुत्र की पूजा कर, फिर ब्राह्मणों द्वारा पुण्याहवाचन के बाद, देव को रथ पर आरोपित (प्रतिष्ठित) करते हुए रात्रि भर जागरण करे। उस रात्रि को अनेक प्रकार के ब्रह्मघोष (वेदध्वनि) एवं माङ्गलिक समारोहों के बीच में जागरण करते हुए वह रात्रि व्यतीत करे। राजन्! फिर प्रातःकाल होने पर ब्राह्मण को पूजित कर अपनी शक्ति भर भोजनादि कराकर सन्तुष्ट करे॥ ७०९ ॥

पूजयित्वा जनं वीर वस्त्रेण विधिवन्नृप।
बीजेन महाबाहो पयसा पायसेन च॥ १० ॥

हे नृप! हे वीर! तदनन्तर उस ब्राह्मण को वस्त्र द्वारा पूजित कर बीज, दुग्ध एवं दुग्ध से बने हुए अन्यान्य भक्ष्य भोज्य पदार्थों द्वारा सन्तुष्ट करे॥ १० ॥

ब्राह्मणान् वाचयित्वा च च्छान्देन विधिना नृप।
कृत्वा पुण्याहशब्दं च रथं च भ्रामयत् पुरे॥ ११ ॥

हे नृप! फिर ब्राह्मणों द्वारा वेदविहित विधि से मन्त्रोचारण तथा पुण्याहवाचन कराकर रथ को सम्पूर्ण नगर में घुमावे॥ ११ ॥

चतुर्वेदविदैर्विप्रैर्भ्रामयेद् ब्रह्मणो रथम्।
बह्वृचाथर्वणोच्चारैश्छन्दोगाध्वर्युभिस्तथा॥ १२ ॥

चारों वेदों के पारगामी पण्डित ब्राह्मणों द्वारा ब्रह्मा के रथ को घुमवाना चाहिये। उनमें वह्वृच, आथर्वण, छन्दोग एवं अध्वर्यु सभी को होने चाहिये॥ १२॥

भ्रामयेद्देवदेवस्य सुरज्येष्ठस्य तं रथम्।
प्रदक्षिणं पुरे सर्वमार्गेण सुसमेन तु॥ १३॥

ऐसे उच्चकोटि के पण्डित व वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा सुरश्रेष्ठ के उक्त रथ की सुन्दर समतल मार्ग द्वारा समस्त नगर में प्रदक्षिणा करानी चाहिये॥ १३॥

न वोढव्यो रथो वीर शूद्रेण शुभमिच्छता।
नारुहेत रथं प्राज्ञो मुक्त्वैकं भोजकं नृप॥ १४॥

हे वीर! कल्याण कामीजन को शूद्र द्वारा देवश्रेष्ठ का उक्त रथ नहीं वहन करवाना चाहिये। हे नृप! इसी प्रकार उक्त भोजक (पुजारी) ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी दूसरे को .रथ पर बैठाना भी नहीं चाहिये॥ १४॥

ब्रह्मणो दक्षिणे पार्श्वे सावित्रीं स्थापयेन्नृप।
भोजको वामपार्श्वे तु पुरतः कञ्जजं न्यसेत्॥ १५॥

हे राजन्! भगवान् ब्रह्मा के दाहिने पार्श्व में सावित्री को स्थापित करना चाहिये। भोजक ब्राह्मण को वाम पार्श्व में रखना चाहिये। सम्मुख भाग में पद्मोद्भव को स्थापित करना चाहिये॥ १५॥

एवं तूर्यनिनादैस्तु शङ्खशब्दैश्च पुष्कलैः।
भ्रामयित्वा रथं राजन् पुरं सर्वं प्रदक्षिणम्॥
स्वस्थाने स्थापयेद् भूयः कृत्वा नीराजनं बुधः॥ १६॥

विद्वान् को तुरुही आदि सुन्दर वाद्यों की एवं शङ्खों की तुमुल ध्वनि कराते हुए रथ को नगर के प्रदक्षिणाक्रम से घुमाते हुए अपने स्थान पर लाकर पुनः स्थापित कर देना चाहिये, तब आरती करनी चाहिये॥ १६॥

य एवं कुरुते यात्रां भक्त्या यश्चापि पश्यति।
रथं चाकर्षते यस्तु स गच्छेद् ब्रह्मणः पदम्॥ १७॥

जो मनुष्य इस प्रकार की रथयात्रा सम्पन्न कराता है, ऐसे

रथयात्रा के उत्सव समारोह को भक्तिपूर्वक देखता है, जो उक्त रथ को खींचता है वह ब्रह्म पद को प्राप्त करता है॥ १७॥

कार्तिकेमास्यमावास्यां यस्तु दीपप्रदीपनम्।
शालायां ब्रह्मणः कुर्यात् स गच्छेद् ब्रह्मणः पदम्॥ १८॥

कार्तिक मास की अमावास्या तिथि को जो मनुष्य ब्रह्मा के आयतन में दीपदान करता है, ब्रह्म पद को प्राप्त करता है॥ १८॥

प्रतिपदि ब्राह्मणांश्चापि गुडमिश्रैः प्रदीपकैः।
वासोभिरहतैश्चापि स गच्छेद् ब्रह्मणः पदम्॥ १९॥

इसी प्रकार कार्तिक मास की प्रतिपदा तिथि को दीपकों के साथ साथ गुड़ मिश्रित अन्न एवं नूतन वस्त्रों द्वारा जो ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करता है वह ब्रह्मपद की प्राप्ति करता है॥ १९॥

गन्धपुष्पैर्नवैर्वस्त्रैरात्मानं पूजयेच्च यः।
तस्यां प्रतिपदायां तु स गच्छेद् ब्रह्मणः पदम्॥ २०॥

उसी प्रतिपदा तिथि को सुगन्धित पुष्प एवं नवीन वस्त्रों द्वारा अपने को जो मनुष्य पूजित करता है वह ब्रह्म पद को प्राप्त करता है॥ २०॥

महापुण्या तिथिरियं बलिराज्यप्रवर्तिनी।
ब्रह्मणः सुप्रिया नित्यं बालेया परिकीर्तिता॥ २१॥

यह प्रतिपदा तिथि महान् पुण्यप्रदा तथा बलि को राज्य प्रदान करने वाली है यह ब्रह्मा की परम प्रिय है इसकी बालेया (बलिराज्यदायिनी) प्रतिपदा के नाम से ख्याति है॥ २१॥

ब्राह्मणान् पूजयित्वास्यामात्मानं च विशेषतः।
स याति परमं स्थानं विष्णोरमिततेजसः॥ २२॥

जो मनुष्य इस परम पुण्यप्रदायिनी तिथि को ब्राह्मणों को विशेष रूप से पूजित कर अपना पूजन भी करता है वह परम तेजस्वी भगवान् विष्णु के लोक को प्राप्त करता है॥ २२॥

चैत्रे मासि महाबाहो पुण्या प्रतिपदा परा।
तस्यां यः श्वपचं स्पृष्ट्वा स्नानं कुर्यान्नरोत्तम॥ २३॥
न तस्य दुरितं किञ्चिन्नाधयो व्याधयो नृप!
भवन्ति कुरुशार्दूल तस्मात् स्नानं प्रवर्तयेत्॥ २४॥

हे महाबाहु राजन्! चैत्र मास की परम श्रेष्ठ प्रतिपदा तिथि भी परम पुण्यदायिनी मानी गयी है, उस पुण्य तिथि को जो चाण्डाल का स्पर्श कर स्नानमात्र कर लेता है उसे कोई पाप नहीं लगता, न कोई आधि-व्याधि ही होती है। हे कुरुशार्दूल! अतः उक्त तिथि को स्नान अवश्य करना चाहिये॥ २३-२४॥

दिव्यं नीराजनं तद्धि सर्वरोगविनाशनम्।
गोमहिष्यादि यत्किञ्चित् तत्सर्वं भूषयेन्नृप॥ २५॥
तैलशस्त्रादिभिर्वस्त्रैस्तोरणाधस्ततो नयेत्।
ब्राह्मणानां तथा भोज्यं कुर्यात् कुरुकुलोद्वह॥ २६॥

वह परम दिव्य भाजन है, जो समस्त रोगों का विनाश करने वाली है। हे राजन्! उक्त पुण्य तिथि पर, यजमान को चाहिये कि जो भी गौ भैंस आदि पशु उसके पास हों तेल तथा शस्त्र तथा वस्त्रादि से भलीभाँति विभूषित करे फिर उन्हें तोरण के नीचे से निकाले। हे कुरुकुलोत्पन्न! उस अवसर पर ब्राह्मणों को विधिवत् भोजन कराना चाहिये॥ २५-२६॥

तिस्रो ह्येताः पराः प्रोक्तास्तिथयः कुरुनन्दन।
कार्त्तिकेऽश्वयुजे मासि चैत्रे मासे च भारत॥ २७॥
स्नानं दानं शतगुणं कार्त्तिकेया तिथिर्नृप!
बलिराज्याप्तिसुखदा पशुलाऽशुभनाशिनी॥ २८॥

हे कुरुनन्दन! ये उपर्युक्त तीन आश्विन कार्तिक एवं चैत्र की प्रतिपदा तिथियाँ सब में परम श्रेष्ठ मानी गयी हैं किन्तु हे भारत! इनमें से कार्तिक की जो तिथि है वह स्नान तथा दान से सौ गुनी अधिक फल देने वाली है। वह परम पुण्यदायिनी कार्तिक की प्रतिपदा बलि को राज्य प्राप्त कराने वाली सुखदायिनी पशुकल्याणकारिणी तथा अशुभविनाशिनी है॥ २७-२८॥

भविष्यपुराण के अन्तर्गत ब्रह्मसम्बन्धी व्रतवर्णन समाप्त॥



ब्रह्मार्चनप्रसङ्गः

ईश्वर०

अथान्यत् संप्रवक्ष्यामि रहस्यं स्थानमुत्तमम्।
सर्वपापहरं नृणां विस्तरात्कथयामि ते॥ १॥

ईश्वर— अब मैं तुम्हें एक और रहस्य की बात सुनाऊँगा, जिसके सुनने से मनुष्यों के सभी प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं॥ १॥

प्रधानदेवमाहात्म्यं माहात्म्यं कल्पवासिनाम्।
सोमेशो दैत्यहन्ता च बालरूपी पितामहः॥ २॥
अर्कस्थलस्तथादित्यः प्रभासः शशिभूषणः।
एते षट् प्रवरा देवाः क्षेत्रे प्राभासिके स्थिताः॥ ३॥

देवाधिदेव का माहात्म्य, कल्पवासियों का माहात्म्य, दैत्यहन्ता सोमेश, बालरूपी पितामह (ब्रह्मा), अर्कस्थल तथा आदित्य, प्रभास शशिभूषण। प्रभास क्षेत्र में ये छह श्रेष्ठ देवता वास करते हैं॥ २-३॥

तेषां दर्शनमात्रेण कृतकृत्यः प्रजायते।
मुच्यते पातकैर्घोरैराजन्मजनितैर्ध्रुवम्॥ ४॥

उनके दर्शनमात्र से भक्तजन कृतार्थ हो जाते हैं। इस दर्शन के प्रभाव से उनके समस्त जन्मों में किये गये घोर पाप भी निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं॥ ४॥

देवी०

पूर्वेषामुक्तदेवानां माहात्म्यं कथितं त्वया।
प्रभासे बालरूपीति यत्प्रोक्तं तत्कथं वचः॥ ५॥

देवी— पहले कहे देवताओं का माहात्म्य की आपने बात कही, ठीक है, परन्तु आपने 'प्रभास में बालरूपी पितामह' जो कहा उसका क्या रहस्य है?॥ ५॥

अन्येषु सर्वस्थानेषु वृद्धरूपी पितामहः।
कथं च समनुप्राप्तो माहात्म्यं तस्य किं स्मृतम्॥ ६॥

वहाँ ब्रह्मा 'बालरूप' कहलाते हैं तथा अन्यत्र वे ही 'वृद्ध पितामह' कहलाते हैं— इसका क्या रहस्य है? वे यहाँ कैसे पहुँचे? उसका क्या माहात्म्य है?— कृपया बताइये॥ ६॥

कथं स पूज्यो देवेश! यात्रा कार्या कथं नृभिः?
एतद्विस्तरतो ब्रूहि प्रसन्नो यदि मे प्रभो॥ ७॥

हे देवेश! उनकी पूजा कैसे करनी चाहिये? भक्तों को उस क्षेत्र की यात्रा कैसे करनी चाहिये? यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे यह सब विस्तार से समझाइये॥ ७॥

ईश्वर०

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि माहात्म्यं ब्रह्मसम्भवम्।
यस्य श्रवणमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः॥ ८॥

ईश्वर— हे देवि! मैं तुम्हें ब्रह्मा जी का माहात्म्य सुनाऊँगा, तुम ध्यानपूर्वक सुनो! जिसके श्रवणमात्र से मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पा जाता है॥ ८॥

नास्ति ब्रह्मसमो देवो नास्ति ब्रह्मसमो गुरुः।
नास्ति ब्रह्मसमं ज्ञानं नास्ति ब्रह्मसमं तपः॥ ९॥

वास्तविकता यह है कि ब्रह्मा के समान न कोई अन्य देवता है, न कोई गुरु (उपदेष्टा) है, न ब्रह्मा के समान कोई ज्ञान है, न कोई तप है॥ ९॥

तावद् भ्रमंति संसारे दुःखशोकभयप्लुताः।
न भवन्ति सुरज्येष्ठे यावद्भक्ताः पितामहे॥ १०॥

पामर जन दुःख, शोक एवं भय से घिरे हुए तब तक इस संसार में घूमते रहते हैं, जब तक वे देवाधिदेव ब्रह्मा की भक्ति नहीं करते हैं॥ १०॥

समासक्तं यथा चित्तं जन्तोर्विषयगोचरे।
यद्येवं ब्रह्मणि न्यस्तं को न मुच्येत बंधनात्॥ ११॥

साधारण प्राणी का चित्त विषयों की तरफ जिस आसक्ति से प्रवृत्त होता रहता है, यदि उसी आसक्ति से वह ब्रह्मा की आराधना में लग जाय तो उसे भवबन्धन से मुक्त होने में कुछ भी विलम्ब न लगे॥ ११॥

देवी०

एवं माहात्म्यसंयुक्तो यदि ब्रह्मा जगद्गुरुः।
प्राभासिके महातीर्थे कस्मिन् स्थाने तु संस्थितः ॥ १२ ॥

देवी— यदि जगद्गुरु ब्रह्मा ऐसे माहात्म्य वाले हैं तो वे इस प्रभासतीर्थ में किस स्थान पर वास करते हैं ? ॥ १२ ॥

किमर्थमागतस्तत्र कस्मिन् काले सुरोत्तमः।
कथं स पूज्यो विप्रेन्द्रैस्तिथौ कस्यां क्रमाद्वद ॥ १३ ॥

वे सुरश्रेष्ठ इस तीर्थ में, प्रारम्भ में, किस हेतु से आये ? किस समय आये ? वे यहाँ श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा कब से तथा किस तिथि से पूजे जाने लगे ? ये सभी बातें मुझे क्रमशः समझाइये ॥ १३ ॥

ईश्वर०

सोमनाथस्य ऐशान्यां सांबादित्याग्निगोचरे।
ब्रह्मणः परमं स्थानं ब्रह्मलोक इवापरः ॥ १४ ॥

ईश्वर—सोमनाथ के ईशान कोण में तथा सांबादित्य के अग्निकोण में ब्रह्मा का वह उत्तम स्थान है. जहाँ आकर उन्होंने सर्वप्रथम वास किया था। उस स्थान को तुम दूसरा ब्रह्मलोक ही समझो ॥ १४ ॥

तिष्ठते कल्पसंस्था ये तत्र कल्पान्तवासिनः।
तत्र स्थाने स्थितो देवि बालरूपी पितामहः ॥ १५ ॥

वहाँ कल्पवासी भक्तजन कल्पपर्यन्त ठहरते हैं। हे देवि! बालरूप पितामह सर्वप्रथम उसी स्थान पर आकर वास करने लगे थे ॥ १५ ॥

जगत्प्रभुर्लोककर्ता सत्त्वमूर्तिर्महाप्रभः।
आगतश्चाष्टवर्षस्तु क्षेत्रे प्राभासिके शुभे ॥ १६ ॥

वह जगत्वामी, विश्वरचयिता, सत्त्वमूर्ति, महान् प्रभावाले ब्रह्मा आठ वर्ष की आयु में इस पवित्र प्रभास क्षेत्र में पधारे थे ॥ १६ ॥

तत्राऽकरोत्तपो घोरं दिव्याब्दानां सहस्रकम्।
संस्थाप्य तु महालिङ्गं सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥ १७ ॥

यहाँ आकर उन्होंने हजार दिव्य वर्षों तक महालिङ्ग की स्थापना कर कठोर तप किया जिससे कि वे विश्वरचना की सामर्थ्य प्राप्त कर सकें॥ १७॥

ततः कालान्तरेऽतीते सोमेन प्रार्थितो विभुः।
क्षयरोगविमुक्तेन सम्यक्छ्रद्धान्वितेन वै॥ १८॥
लिङ्गप्रतिष्ठाहेतोर्वै क्षेत्रे प्राभासिके शुभे।
कोटिब्रह्मर्षिभिः सार्द्धं सहितो विश्वकर्मणा॥
कारयामास विधिवत्प्रतिष्ठां लिङ्गमुत्तमम्॥ १९॥

फिर समय बीतने पर, कभी क्षयरोग से विमुक्त होकर श्रद्धाभावाभिभूत चन्द्रमा ने उस ब्रह्मा जी से पूजा हेतु लिङ्ग प्रतिष्ठा के लिये निवेदन किया। तब ब्रह्मा जी ने इसी प्रभासतीर्थ में करोड़ों ब्रह्मर्षियों के सान्निध्य में विश्वकर्मा के साथ मिलकर, शास्त्रविधि के अनुसार उत्तम शिवलिङ्ग की स्थापना की॥ १८-१९॥

प्रतिष्ठाप्य ततो लिङ्गं सोमनाथं वरानने।
दापयामास विप्रेभ्यो भूरिशो यज्ञदक्षिणाम्॥ २०॥

हे श्रेष्ठमुखि! इस तरह सोमनाथ के उत्तम लिङ्ग की स्थापना कर, ब्रह्मा जी ने चन्द्रमा से ब्राह्मणों को अधिक से अधिक यज्ञ-दक्षिणा दिलायी॥ २०॥

एवं प्रतिष्ठितं लिङ्गं ब्रह्मणा लोककर्त्तृणा।
वर्षाणि चात्र जातानि प्रभासे बालरूपिणः॥ २१॥
द्विचत्वारिंशद्वयं चैव क्षेत्रमध्यनिवासिनः।
एवं परार्द्धमगमत्प्रभासक्षेत्रवासिनः॥ २२॥

इस तरह विश्वस्रष्टा उन बालरूपी ब्रह्मा के द्वारा वह लिङ्ग प्रतिष्ठित हुआ और इस प्रभासक्षेत्र में वास करते हुए उन ब्रह्मा के ४२ वर्ष बीते। इसी के साथ, प्रभासक्षेत्र में वास करते करते उनकी आयु का परार्धकाल भी व्यतीत हो गया॥ २१-२२॥

देवी०

ब्रह्मणो दिनमानं तु मासवर्षसहस्रकम्।
तत्सर्वं विस्तराद् ब्रूहि यथायुर्ब्रह्मणः स्मृतम्॥ २३॥

देवी— हे भगवन्! ब्रह्म जी का दिनमान कितने हजार मास एवं वर्षों के सङ्कलन से कितना होता है ?— कृपया यह सब विस्तार से बताइये, जिससे मैं उनकी आयु का ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त कर सकूँ ॥ २३ ॥

ईश्वर०

परमायुः स्मृतो ब्रह्मा पराार्द्धं तस्य वै गतम्।
प्रभासक्षेत्रसंस्थस्य द्वितीयं भवतेऽधुना ॥ २४ ॥

ईश्वर— ब्रह्मा की जितनी आयु बतायी गयी है उसका परार्ध बीत चुका है। उनके प्रभासक्षेत्र में रहते हुए, उनकी आयु का दूसरा परार्ध चल रहा है ॥ २४ ॥

यदा प्राभासिके क्षेत्रे ब्रह्मा लोकपितामहः।
आगतश्चाष्टवर्षस्तु बालरूपी तदोच्यते ॥ २५ ॥

जब ये लोक पितामह ब्रह्मा जी प्रारम्भ में इस प्रभास क्षेत्र में आये थे तो ये आठ वर्ष के थे। उस समय ये 'बालरूपी ब्रह्मा' कहलाते थे ॥ २५ ॥

अन्येषु सर्वतीर्थेषु वृद्धरूपी पितामहः।
मुक्त्वा प्राभासिकं क्षेत्रं सदैव विबुधप्रिये ॥ २६ ॥

हे विबुधप्रिये! प्रभासक्षेत्र को छोड़कर ब्रह्मा जी अन्य सब तीर्थों में 'वृद्ध पितामह' कहलाते हैं ॥ २६ ॥

ब्रह्माण्डे यानि तीर्थानि ब्रह्मणस्तेषु ये स्मृताः।
तेषामाद्यो महातेजाः प्रभासे यो व्यवस्थितः ॥ २७ ॥

इस समस्त ब्रह्माण्ड में जितने भी तीर्थ हैं, उनमें जितने भी ब्रह्मा हैं उनमें प्रधान ये महान् तेजस्वी प्रभासतीर्थ के बालरूपी ब्रह्मा ही हैं ॥ २७ ॥

कल्पे कल्पे तु नामानि शृणु त्वं तानि वै प्रिये।
स्वयम्भूः प्रथमे कल्पे द्वितीये पद्मभूः स्थितः ॥ २८ ॥

हे प्रिये! प्रत्येक कल्प में जो ब्रह्मा हुए हैं उनका नाम क्रमशः सुनो।

प्रथम कल्प के ब्रह्मा का नाम था 'स्वयम्भू', दूसरे कल्प के ब्रह्मा का नाम था 'पद्मभू' ॥ २८ ॥

तृतीये विश्वकर्तेति बालरूपी चतुर्थके।
एतानि मुख्यनामानि कथितानि स्वयम्भुवः ॥ २९ ॥

तृतीय कल्प के ब्रह्मा का नाम था 'विश्वकर्ता'। चतुर्थ कल्प के ब्रह्मा का नाम था 'बालरूपी'।

स्वयम्भू ब्रह्मा के ये ही मुख्य नाम कहे गये हैं ॥ २९ ॥

नित्यं संस्मरते यस्तु स दीर्घायुर्नरो भवेत्॥ ३० ॥

इनका नित्य स्मरण करने वाला पुरुष दीर्घायु होता है ॥ ३० ॥

चन्द्रसूर्यग्रहाः सर्वे सदेवासुरमानुषाः।
त्रैलोक्यं नश्यते सर्वं ब्रह्मरात्रिसमागमे ॥ ३१ ॥

प्रलयकाल— ब्रह्मरात्रि के आने पर, देवताओं मनुष्यों एवं असुरों सहित सभी चन्द्र, सूर्य आदि ग्रह तथा यह समग्र त्रिलोकी— सब कुछ नष्ट हो जाता है ॥ ३१ ॥

पुनर्दिने तु सञ्जाते प्रबुद्धः सन् पितामहः।
तथा सृष्टिं प्रकुरुते यथापूर्वमभूत्प्रिये॥ ३२ ॥

पुनः सृष्टि— फिर ब्रह्मा का दिन आने पर, हे प्रिये! पितामह ब्रह्मा प्रबुद्ध हो पूर्ववत् सृष्टि प्रारम्भ करते हैं ॥ ३२ ॥

दिनमानं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणो लोककर्तृणः।
नेत्रभागाच्चतुर्भागस्त्रुटिः कालो निगद्यते॥ ३३ ॥

ब्रह्मा का दिनमान— लोककर्ता ब्रह्मा के दिनमान के विषय में मैं तुम्हें विस्तार से बताता हूँ— नेत्रभाग का चतुर्थ अंश जितना समय 'त्रुटि' कहलाता है ॥ ३३ ॥

तस्माच्च द्विगुणं ज्ञेयं निमिषान्तं वरानने!
निमिषैः पञ्चदशभिः काष्ठा इत्युच्यते बुधैः।
त्रिंशद्भिश्चैव काष्ठाभिः कला प्रोक्ता मनीषिभिः ॥ ३४ ॥

हे सुमुखि! उससे द्विगुण भाग 'निमिष' कहलाता है। विद्वान् लोग इन पन्द्रह (१५) निमिषों का समग्र भाग एक 'काष्ठा' कहते है। बुद्धिमान् लोग तीस (३०) काष्ठाओं को एक 'कला' कहते हैं ॥ ३४ ॥

त्रिंशत्कलो मुहूर्तः स्याद् दिनं पञ्चशैस्तु तैः।
दिनमाना निशा ज्ञेया अहोरात्रं तयो र्भवेत्॥ ३५॥

तीस कलाओं का एक 'मुहूर्त' कहलाता है। एक दिन में पन्द्रह (१५) मुहूर्त होते हैं। एक दिन के समान काल को 'निशा' (रात्रि) कहते हैं। इन दोनों (दिन और रात्रि) को मिलाकर 'अहोरात्र' कहलाता है॥ ३५॥

तैः पञ्चदशभिः पक्षः पक्षाभ्यां मास उच्यते।
मासैश्चैवायनं षड्भिरब्दं स्यादयनद्वयात्॥ ३६॥

इन पन्द्रह अहोरात्रों का एक 'पक्ष' कहलाता है। दो पक्षों का एक 'मास' कहलाता है। इन छह मासों का एक 'अयन' (सूर्य की गति) कहलाता है। दो अयन का एक 'अब्द' (वर्ष) कहलाता है॥ ३६॥

चत्वारिंशद्धि लक्षाणि लक्षाणा त्रितयं पुनः।
विंशतिश्च सहस्राणि ज्ञेयं सौरं चतुर्युगम्॥ ३७॥

चालीस लाख, तीन लाख एवं बीस हजार (४३२००००)—सौर वर्षों का 'चतुर्युग' कहलाता है॥ ३७॥

चतुर्युगैकसप्तत्या मन्वन्तरमुदाहृतम्।
ऐन्द्रमेतद्भवेदायुः समासात्तव कीर्तितम्॥ ३८॥

इकहत्तर चतुर्युगों का एक 'मन्वन्तर' कहलाता है। यह इतना काल एक इन्द्र की आयु कहलाता है, जो कि मैंने तुमको संक्षेप से बता दिया॥ ३८॥

स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं मनुः स्वारोचिषस्ततः॥
औत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्ततः॥ ३९॥

चौदह मनु— पहले मनु का नाम 'स्वायम्भुव मनु' था, दूसरे का नाम था 'स्वारोचिष'। तदनन्तर, ३ औत्तम, ४. तामस, ५. रैवत, ६. चाक्षुष नाम के मनु हुए॥ ३९॥

वैवस्वतोऽथ सावर्णिर्ब्रह्मसावर्णिरेव च।
धर्मसावर्णिनामा च रोच्यो भूत्यस्तथैव च॥ ४०॥

फिर ७. वैवस्वत, ८. अर्कसावर्णि, ९. ब्रह्मसावर्णि, १०. धर्म सावर्णि, ११. रौच्य, १२वें भूत्य मनु हुए॥ ४०॥

चतुर्दशैते मनवः संख्यातास्ते यथाक्रमम्।
भूतान् भविष्यानिन्द्रांश्च सर्वान् वक्ष्ये तव क्रमात्॥ ४१॥

इस तरह मैंने तुमको चौदह मनु[1] गिना दिया। अब मैं तुम्हें भूतकाल तथा भविष्यकाल के 'इन्द्रों' के नाम बताऊँगा॥ ४१॥

विश्वभुक्क विपश्चिच्च सुकीर्तिः शिविरेव च।
विभुर्मनोभुवश्चैव तथौजस्वी बलिर्बली॥ ४२॥
अद्भुतश्च तथा शान्ती रम्यो देववरो वृषा।
ऋतधामा दिवःस्वामी शुचिः शक्राश्चतुर्दश॥ ४३॥

चौदह इन्द्र— विश्वभुक्, विपश्चित्, सुकीर्ति, शिवि, विभु मनोभुव, ओजस्वी तथा बलवान् बलि, अद्भुत, शान्ति, रम्य, वृषा, ऋतुधामा, दिवःस्वामी, शुचि एवं शक्र॥ ४२-४३॥

एते सर्वे विनश्यन्ति ब्रह्मणो दिवसे प्रिये!
रात्रिस्तु तावती ज्ञेया कल्पमानमिदं स्मृतम्॥ ४४॥

हे प्रिये! ये सभी इन्द्र ब्रह्मा का एक दिन पूर्ण होने पर विनष्ट हो जाते हैं। इतना ही समय-मान ब्रह्मा की रात्रि का भी समझना चाहिये। यह एक कल्प का मान है॥ ४४॥

प्रथमं श्वेतकल्पस्तु द्वितीयो नीललोहितः।
वामदेवस्तृतीयस्तु ततो राथन्तरोऽपरः॥ ४५॥

तीस कल्प— पहले कल्प का नाम है— श्वेत (वाराह) कल्प, दूसरे का नाम है नीललोहित। तीसरे का नाम है— वामदेव, उसके बाद चतुर्थ कल्प है— 'राथन्तर'॥ ४५॥

रौरवः पञ्चमः प्रोक्तः षष्ठः प्राण इति स्मृतः।
सप्तमोऽथ वृहत्कल्पः कन्दर्पोऽष्टम उच्यते॥ ४६॥

---

१. ग्रन्थकार ने यहाँ बारह 'मनु'ओं के ही नाम लिखे हैं। चौदह मनुओं के नाम क्रमशः ये हैं— १. स्वायम्भुव, २. स्वारोचिष ३. औत्तमि, ४. तामस, ५. रैवत, ६. चाक्षुष, ७. वैवस्वत, ८. सावर्णि, ९. दक्षसाविर्णि, १०. ब्रह्मसावर्णि, ११. धर्मसावर्णि, १२. रुद्रसावर्णि, १३. रोच्यदैवसावर्णि एवं १४. इन्द्र सावर्णि। (द्र० आप्टे का संस्कृत हिन्दी शब्द कोष, पृष्ठ ७७३)

पाँचवाँ 'रौरव', छठा 'प्राण', सातवाँ 'बृहत्कल्प' और आठवाँ कल्प 'कन्दर्प' कहलाता है॥ ४६॥

सद्योऽथ नवमः प्रोक्त ईशानो दशमः स्मृतः।
ध्यान एकादशः प्रोक्तस्तथा सारस्वतोऽपरः॥ ४७॥

नवम है सद्य, दशम है 'ईशान'। एकादश है 'ध्यान' और द्वादंश है 'सारस्वत' ॥ ४७॥

त्रयोदश उदानस्तु गरुडोऽथ चतुर्दशः।
कौर्मः पञ्चदशो ज्ञेयः पौर्णमासी प्रजापतेः॥ ४८॥

त्रयोदश 'उदान', चतुर्दश 'गरुड़। पञ्चदश कल्प का नाम है 'कौर्म'। इस कल्प में ब्रह्मा की पौर्णमासी (पूर्णिमा तिथि) बीत रही होती है॥ ४८॥

षोडशो नारसिंहस्तु समाधिस्तु ततः परः।
आग्नेयोऽष्टादशः प्रोक्तः सोमकल्पस्ततोऽपरः॥ ४९॥

सोलहवें कल्प का नाम है 'नारसिंह' और सत्रहवें का नाम समाधि है। अठारहवें का नाम है 'आग्नेय' एवं उन्नीसवाँ कल्प 'सोमकल्प' कहलाता है॥ ४९॥

भावनो विंशतिः प्रोक्तः सुप्तमालीति चापरः।
वैकुण्ठश्चार्चिषो रुद्रो लक्ष्मीकल्पस्तथापरः॥ ५०॥
पञ्चविंशोऽथ वैराजो गौरीकल्पस्तथोंऽधकः।
माहेश्वरस्तथा प्रोक्तस्त्रिपुरो यत्र घातितः॥ ५१॥

बीसवाँ कल्प 'भावन' तथा इक्कीसवाँ 'सुप्तमाली' कहलाता है। बाईसवाँ बैकुण्ठ, तेईसवाँ 'आर्चिष', चौबीसवाँ रुद्रकल्प, पच्चीसवाँ लक्ष्मी-कल्प॥ ५०॥

एतदन्तर, वैराज, गौरीकल्प तथा अन्धक एवं माहेश्वर कल्प कहा गया है, जिस कल्प में त्रिपुरासुर का वध हुआ था॥ ५१॥

पितृकल्पस्तथांते च या कुहुर्ब्रह्मण : स्मृता।
त्रिंशत्कल्पाः समाख्याता ब्रह्मणो मासि वै प्रिये॥ ५२॥

और अन्त में पितृकल्प आता है, जो कि ब्रह्मा की अमावस्या तिथि का भोगकाल कहलाता है। इस तरह, हे प्रिये! मैंने तुम को

तीस कल्पों का व्याख्यान कर दिया, जो ब्रह्मा के एक मास में होते हैं॥ ५२॥

अतीताः कथिताः सर्वे वाराहो वर्त्ततेऽधुना।
प्रतिपद् ब्रह्मणो यत्र वाराहेणोद्धृता मही॥ ५३॥

यों मैंने अतीत कल्पों की गणना कर दी है, वर्तमान में वाराह कल्प चल रहा है। यह काल ब्रह्मा की 'प्रतिपत् तिथि काल' कहा जाताहै। इसी कल्प में वाराह भगवान् ने इस पृथ्वी का उद्धार किया था॥ ५३॥

त्रिंशत्कल्पैः स्मृतो मासो वर्षं द्वादशभिस्तु तैः।
अनेन वर्षमानेन तदा ब्रह्माऽष्टवार्षिकः॥
आनीतः सोमराजेन सोमनाथः प्रतिष्ठितः॥ ५४॥

इस तीस कल्प के एक मास की तरह बारह मास बीतने पर ब्रह्मा का एक वर्ष होता है। ब्रह्मा जी जब सर्वप्रथम इस प्रभास क्षेत्र में आये थे, तब उनकी आयु इस वर्षमान से आठ वर्ष की थी। जब सोमराज (चन्द्रमा) से मँगवाकर यहाँ सोमनाथ लिङ्ग की स्थापना की थी॥ ५४॥

एवं क्षेत्रे निवसतः प्रभासे बालरूपिणः।
परार्द्धमेकमगमद् द्वितीयं वर्त्ततेऽधुना॥ ५५॥

इस तरह बालरूपी ब्रह्मा को इस प्रभास क्षेत्र में रहते हुए एक परार्ध बीत गया और दूसरा परार्ध चल रहा है॥ ५५॥

एवं महाप्रभावोऽसौ प्रभासक्षेत्रमध्यगः।
ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् बालत्वात् क्षेत्रमाश्रितः॥ ५६॥

यों, इस प्रभास क्षेत्र के मध्य में यह महान् प्रभावशाली स्वयम्भु भगवान् ब्रह्मा बालरूप में सदा विराजमान रहते हैं॥ ५६॥

स वै पूज्यो नमस्कार्यो वन्दनीयो मनीषिभिः।
आदौ स एव पूज्यः स्यात् सम्यग्यात्राफलेप्सुभिः॥ ५७॥

वही ब्रह्मा विद्वान् भक्तों द्वारा पूजनीय हैं, नमस्करणीय हैं, वन्दनीय हैं। प्रभासयात्रा का अधिक से अधिक शुभ फल प्राप्त करने के लिये भक्तों को सर्वप्रथम भगवान् ब्रह्मा का पूजन करना चाहिये॥ ५७॥

यस्तं पूजयते भक्त्या स मां पूजयते ध्रुवम्।
यस्तं द्वेष्टि स मां द्वेष्टि योऽस्य पूज्यो ममैव सः ॥ ५८ ॥

जो भक्त ब्रह्मा की पूजा करता है वह मानो मेरी ही पूजा करता है। इसी प्रकार जो ब्रह्मा से द्वेष करता है वह मानो मुझसे ही द्वेष करता है। जो ब्रह्मा का पूज्य है वही मेरा भी पूज्य है ॥ ५८ ॥

ब्रह्मणा पूज्यमानेन अहं विष्णुश्च पूजितः।
विष्णुना पूज्यमानेन अहं ब्रह्मा च पूजितः ॥ ५९ ॥

ब्रह्मा की पूजा किये जाने पर मेरी तथा विष्णु की पूजा भी इसमें समाविष्ट हो जाती है। उसी तरह विष्णु की पूजा किये जाने पर मेरी और ब्रह्मा की पूजा भी पूर्ण हुई समझनी चाहिये ॥ ५९ ॥

मम पूजनमात्रेण ब्रह्मविष्णू च पूजितौ।
सत्त्वं ब्रह्मा रजो विष्णुस्तमोऽहं सम्प्रकीर्तितः ॥ ६० ॥

इसी तरह मेरी पूजा किये जाने पर ब्रह्मा एवं विष्णु की पूजा भी हुई समझ लेनी चाहिये। ब्रह्मा सत्त्वगुणबहुल, विष्णु रजोगुणबहुल और मैं (शिव) तमोगुणबहुल हूँ— ऐसा कहा जाता है ॥ ६० ॥

वायुर्ब्रह्माऽनलो रुद्रो विष्णुरापः प्रकीर्तितः।
रात्रिर्विष्णुरहो रुद्रो या सन्ध्या स पितामहः ॥ ६१ ॥

ब्रह्मा को वायु रूप, शिव को अग्निरूप तथा विष्णु को जलरूप समझना चाहिये। इसी तरह विष्णु को रात्रि, रुद्र को दिन तथा ब्रह्मा को सन्ध्या रूप समझना चाहिये ॥ ६१ ॥

सामवेदो ह्यहं देवि ब्रह्मा ऋग्वेद उच्यते।
यजुर्वेदो भवेद्विष्णुः कलाधारो ह्यथर्वणः ॥ ६२ ॥

हे देवि! मैं सामवेद हूँ, ब्रह्मा ऋग्वेद हैं, विष्णु यजुर्वेद हैं तो कलाधार अर्थववेद हैं ॥ ६२ ॥

उष्णकालो ह्यहं देवि वर्षाकालः पितामहः।
शीतकालो भवेद्विष्णुरेवं कालत्रयं हि सः ॥ ६३ ॥

देवि! मैं ग्रीष्मकाल हूँ, पितामह वर्षाकाल हैं, विष्णु शीतकाल हैं। इस तरह तीनों कालों की वास्तविकता समझ लो ॥ ६३ ॥

दक्षिणाग्निरहं ज्ञेयो गार्हपत्यो हरिः स्मृतः।
ब्रह्मा चाहवनीयस्तु एवं सर्वं त्रिदैवतम् ॥ ६४ ॥

मैं दक्षिणाग्नि हूँ तो विष्णु गार्हपत्य अग्नि हैं तथा ब्रह्मा आह्वनीय अग्नि हैं। इस तरह सब कुछ त्रिदेवमय है॥ ६४॥

अहं लिङ्गस्वरूपस्थो भगो विष्णु प्रकीर्तितः।
बीजसंस्थो भवेद् ब्रह्मा विष्णुरापः प्रकीर्तितः॥ ६५॥
अहमाकाशरूपस्थ एवं तत्त्वमयं प्रभुः।
आकाशात् स्त्रवते यच्च तद्बीजं ब्रह्मसंस्थितम्॥
स्वरूपं ब्राह्ममाश्रित्य ब्रह्मा बीजप्ररोहकः॥ ६६॥

मैं लिङ्गस्वरूपस्थ हूँ तो विष्णु भगस्वरूप हैं और ब्रह्मा बीज (वीर्य) स्वरूप हैं तथा विष्णु ही ज़लस्वरूप हैं।

मैं आकाशरूपस्थ हूँ, आकाश से जिसका स्त्रवण होता है वह ब्रह्मा में जाकर स्थित होता है। वह ब्रह्मस्वरूप का आश्रयण कर लेता है। यहाँ ब्रह्मा ही बीजप्ररोहक हैं॥ ६५-६६॥

नाभिमध्ये स्थितो ब्रह्मा विष्णुश्च हृदयान्तरे।
वक्रमध्ये अहं देवि आधारः सर्वदेहिनाम्॥ ६७॥

हे देवि! ब्रह्मा नाभि में स्थित रहते हैं तो विष्णु हृदय में। मैं मुख में स्थित रहता हूँ। यों हम तीनों देवता ही सब प्राणियों के आधार हैं॥ ६७॥

यश्चाहं स स्वयं ब्रह्मा यो ब्रह्मा स हुताशनः।
या देवी स स्वयं विष्णुर्यो विष्णुः स च चन्द्रमाः॥ ६८॥

जो मैं हूँ वे ही वे स्वयं ब्रह्मा हैं। जो ब्रह्मा हैं वही अग्नि हैं। जो देवी (शक्ति) है वही विष्णु है। जो विष्णु है वही चन्द्रमा है॥ ६८॥

यः कालः स स्वयं ब्रह्मा यो रुद्रः स च भास्करः।
एवं शक्तिविशेषेण परं ब्रह्म स्थितं प्रिये॥ ६९॥

जिसे काल कहते हैं वही ब्रह्मा है, जो रुद्र है वही सूर्य है। हे प्रिये! इस तरह यह परब्रह्म कोई न कोई आकार लेकर इस संसार में स्थित है॥ ६९॥

ॐकारस्तत्परं ब्रह्म गायत्री प्रकृतिः परा।
उभावेतौ नरो ज्ञात्वा न विच्यवति मुच्यते॥ ७०॥

यह जो ॐकार है यही परब्रह्म है, गायत्री मन्त्र ही परा

प्रकृति है। इन दोनों का सम्यग्ज्ञाता ही भवबन्धन से छुटकारा पा सकता है, मुक्त हो पाता है॥ ७०॥

एवं यो वेद देवेशि अद्वैतं परमाक्षरम्।
स सर्वं वेद नैवान्यो भेदकर्त्ता नराधमः॥ ७१॥

हे देवेशि! इस तरह जो बुद्धिमान् उस अद्वैत परम अक्षर के विषय में जानता है वही वास्तविक ज्ञानी है, दूसरा नहीं। भेदवादी पामरजन तो निकृष्ट ही कहलाते हैं॥ ७१॥

एकरूपं परं ब्रह्म कार्यभावात् पृथक्स्थितः।
यस्तं द्वेष्टि वरारोहे ब्रह्मद्वेष्टा स उच्यते॥ ७२॥

यों तो यह परब्रह्म एक ही रूप ही है, परन्तु कार्यभाव के कारण पृथक् पृथक् दिखायी देता है। अतः हे वरारोहे! उससे द्वेष करने वाला 'ब्रह्मद्वेष्टा' कहलाता है॥ ७२॥

दक्षिणाङ्गे स्थितो ब्रह्मा वामाङ्गे मम केशवः।
यस्तयोर्द्वेषमाधत्ते स द्वेष्टा मम भामिनि!॥ ७३॥

हमारा दक्षिणाङ्ग यदि ब्रह्मा है तो वामाङ्ग विष्णु है। अतः हे भामिनि! उनसे द्वेष करने वाला वस्तुतः मुझ से ही द्वेष करता है॥ ७३॥

एवं ज्ञात्वा वरारोहे ह्यभिन्नेनान्तरात्मना।
ब्रह्माणं केशवं रुद्रमेकरूपेण पूजयेत्॥ ७४॥

इस प्रकार इन तीनों को अभिन्नात्मा जानकर, हे वरारोहे! ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव की समान भाव से पूजा करनी चाहिये॥ ७४॥

स्कन्दपुराणान्तर्गत प्रभासखण्ड में ब्रह्मार्चनप्रसङ्गवर्णनात्मक एक सौ पाँचवाँ अध्याय समाप्त॥



ब्रह्मणः पूजाविधानम्

ईश्वर०

अथ पूजाविधानं ते कथयामि समासतः।
भक्तिभेदान् पृथक् तस्य ब्रह्मणो बालरूपिणः।
रथयात्राविधानं तु स्तोत्रमन्त्रविधिक्रमम्॥ १॥

ईश्वर— अब मैं तुम्हें उस बालरूपी ब्रह्मा की पूजाविधि संक्षेप से बताऊँगा, साथ ही उनके भक्तिभेद भी बताऊँगा। उसकी रथयात्राविधि, तत्सम्बद्ध स्तोत्र, मन्त्रों की विधि भी क्रमशः बताऊँगा॥ १॥

विविधा भक्तिरुद्दिष्टा मनोवाक्कायसम्भवा।
लौकिकी वैदिकी चापि भवेदाध्यात्मिकी तथा॥ २॥

ब्रह्मा जी की मानसिक, वाचिक एवं कायिक भेद से नाना प्रकार की भक्ति कही गयी है।

लौकिक, वैदिक एवं आध्यात्मिक भेद से भी वह भक्ति विभक्त की जा सकती है॥ २॥

ध्यानधारणया या तु वेदानां स्मरणेन च।
ब्रह्मप्रीतिकरी चैषा मानसी भक्तिरुच्यते॥ ३॥

मानसी भक्ति— ध्यान, धारणा से, वैदिक मन्त्रों के जप से, ब्रह्मा में श्रद्धा-उत्पाद करनेवाली भक्ति 'मानसी भक्ति' कहलाती है॥ ३॥

मन्त्रवेदनमस्कारैरग्निश्राद्धविधानकैः।
जाप्यैश्च धारणैश्चैव वाचिकी भक्तिरुच्यते॥ ४॥

वाचिकी भक्ति— मन्त्रों के, वेदों के सूक्तों के माध्यम से, विविध नमस्कारों से, अग्नि में विशिष्ट आहुतियों से, श्राद्धविधियों से, जपों से, की धारणा से की गयी भक्ति 'वाचिकी भक्ति' कहलाती है॥ ४॥

व्रतोपवासनियमैश्चित्तेंन्द्रियनिरोधिभिः ।
कृच्छ्रसन्तपनैश्चान्यैस्तथा चान्द्रायणादिभिः ॥ ५ ॥
ब्रह्मोक्तैश्चोपवासैश्च तथान्यैश्च शुभव्रतैः ।
कायिकी भक्तिराख्याता त्रिविधा तु द्विजन्मनाम् ॥ ६ ॥

कायिकी भक्ति— व्रत उपवासादि के नियमों से, चित्तनिरोध तथा इन्द्रियनिरोध से, कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रतों से ब्रह्मा के प्रति कहे गये उपवासों से एवं अन्य शुभ व्रतों से ब्राह्मणों द्वारा की गयी भक्ति 'कायिकी भक्ति' कहलाती है, इस प्रकार से त्रिधा भक्ति वर्णित है ॥ ५–६ ॥

गोघृतक्षीरदधिभिर्मध्विक्षुसुकुशोदकैः ।
गंधमाल्यैश्च विविधैर्वस्तुभिश्चोपपादिभिः ॥ ७ ॥
घृतगुग्गुलधूपैश्च कृष्णागुरुसुगन्धिभिः ।
भूषणैर्हेमरत्नाद्यैश्चित्राभिः स्त्रग्भिरेव च ॥ ८ ॥
न्यासैः परिसरैः स्तोत्रैः पताकाभिस्तथोत्सवैः ।
नृत्यवादित्रगीतैश्च सर्ववस्तूपहारकैः ॥ ९ ॥
भक्ष्यभोज्यान्नपानैश्च या पूजा क्रियते नरैः ।
पितामहं समुद्दिश्य सा भक्तिर्लौकिकी मता ॥ १० ॥

लौकिकी भक्ति— गौ के घी, दूध, दही, मधु, इक्षुरस तथा कुशोदक से, विविध गन्ध द्रव्य एवं मालाओं से ऐसी ही अन्य उपयुक्त वस्तुओं से ॥ ७ ॥

घृत, गुग्गुलु, धूप, कृष्ण (लोहवान) अगरु आदि गन्धद्रव्यों से नानाविध अलङ्कारों से, सुवर्ण एवं रत्नों से, विविध मालाओं से ॥ ८ ॥

नृत्य वादय एवं सङ्गीत से, अनेकविध वस्तुओं के उपहार से, नानाविध न्यास परिसर एवं स्तोत्रों से, चित्र विचित्र पताकाओं तथा विविध उत्सवों से ॥ ९ ॥

तरह तरह के खादनीय भोजनीय अन्नविकारों तथा पेय द्रव्यों से लोगों द्वारा ब्रह्मा की जो पूजा-भक्ति की जाती है वह 'लौकिकी भक्ति' कहलाती है ॥ १० ॥

वेदमन्त्रहविर्भागैः क्रिया या वैदिकी स्मृता॥ ११॥

वैदिकी भक्ति— वैदिक मन्त्रों एवं हविर्भागों से जो ब्रह्मा जी की भक्ति की जाती है वह 'वैदिकी भक्ति' कहलाती है॥ ११॥

दर्शे च पौर्णमास्यां च कर्त्तव्यं चाग्निहोत्रजम्।
प्राशनं दक्षिणादानं पुरोडाश इति क्रिया॥ १२॥
इष्टिर्धृतिः सोमपानं याज्ञियं कर्म सर्वशः।
ऋग्यजुसामजाप्यानि संहिताध्ययनानि च॥
कृता ब्रह्माणमुद्दिश्य सा भक्तिर्वैदिकी मता॥ १३॥

अमावस्या एवं पूर्णिमा के दिन अग्निहोत्रजन्य प्राशन, दक्षिणादान, पुरोडाश, इष्टि, धृति, सोमपान, यज्ञसम्बद्ध कर्म, ऋग् यजुः, समावेद के मन्त्रों का जप, संहिताओं का एक निश्चित पाठ— ब्रह्मा के उद्देश्य से की गयी ये सब क्रियाएँ वैदिकी भक्ति कहलाती है॥ १२-१३॥

प्राणायामपरो नित्यं ध्यानवान्विजितेन्द्रियः।
भैक्ष्यभक्षी व्रती चापि सर्वप्रत्याहृतेन्द्रियः॥ १४॥
धारणं हृदये कृत्वा ध्यायमानः प्रजेश्वरम्।
हृत्पद्मकर्णिकासीनं रक्तवर्णं सुलोचनम्॥ १५॥
पश्यन्तु द्योतितमुखं ब्रह्माणं सुकटीतटम्।
रक्तवर्णं चतुर्बाहुं वरदाभयहस्तकम्॥
एवं यश्चिन्तयेद्देवं ब्रह्मभक्तः स उच्यते॥ १६॥

ब्रह्मभक्त— जो आराधक प्राणायाम एवं ध्यानक्रिया के सहारे से इन्द्रियों का संयम करते हुए भिक्षान्न से जीवनयापन करता हुआ व्रत पूर्वक सभी इन्द्रियों को अन्तर्मुख कर॥ १४॥

हृदय में धारण करता हुआ ब्रह्मा की मूर्ति का इस प्रकार ध्यान करता है— हृत्कमल की ग्रन्थि पर वे विराजमान हैं, रक्तवर्ण हैं, सुन्दर नेत्रों वाले हैं॥ १५॥

जिनका कटिप्रदेश नयनाभिराम है, मुख कमल आभावान् है, वे रक्तवर्ण हैं, चतुर्बाहु हैं, वरद अभयप्रद हाथ उठाये हुए हैं। इस प्रकार जो ब्रह्मा का ध्यान करता है, वह 'ब्रह्मभक्त' कहलाता है॥ १६॥

विधिं च शृणु मे देवि यः स्मृतः क्षेत्रवासिनाम्॥ १७॥

क्षेत्रवासी— देवि! अब तुम ब्रह्मा के क्षेत्रवासी भक्तों के विषय में सुनो॥ १७॥

निर्ममा निरहङ्कारा निःसङ्गा निष्परिग्रहाः।
चतुर्वर्गेऽपि निःस्नेहाः समलोष्टाश्मकाञ्चनाः॥ १८॥
भूतानां कर्मभिर्नित्यं त्रिविधैरभयप्रदाः।
प्राणायामपरा नित्यं परध्यानपरायणाः॥ १९॥
जापिनः शुचयो नित्यं यतिधर्मक्रियापराः।
साङ्ख्ययोगविधिज्ञा ये धर्मविच्छिन्नसंशयाः।
ब्रह्मपूजारता नित्यं ते विप्राः क्षेत्रवासिनः॥ २०॥

ये ममत्वरहित, निरहङ्कार, निःसङ्ग, अपरिग्रही, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष— इनके प्रति निरपेक्ष, ढेला, पत्थर एवं सुवर्ण के प्रति समभाव रखने वाले॥ १८॥

अपने कायिक, वाचिक मानसिक कर्मों से प्राणियों को अभय प्रदान करने वाले, प्राणायाम एवं ध्यानभावना में मग्न॥ १९॥

मन्त्रजपकर्ता, शुद्धभाव वाले, यतिधर्म में तत्पर, साङ्ख्ययोग की विधियों को जानने वाले, धर्मज्ञान से अपने मानसिक सन्देहों को दूर करने वाले, निरन्तर ब्रह्मा की पूजा में रत ऐसे ब्राह्मण 'क्षेत्रवासी' कहलाते हैं॥ २०॥

तैर्यथा पूजनीयो वै बालरूपी पितामहः।
तथाहं कीर्त्तयिष्यामि शृणुष्वेकमनाः प्रिये॥ २१॥
स्नात्वा तु विमले तीर्थे शुक्लाम्बरधरः शुचिः।
पूजोपहारसंयुक्तस्ततो ब्रह्माणमर्चयेत्॥ २२॥

क्षेत्रवासियों द्वारा ब्रह्मा की पूजाविधि— उन क्षेत्रवासियों द्वारा बालरूपी पितामह की पूजा जिस प्रकार करनी चाहिये वह मैं बताऊँगा। अब इस विषय में मुझसे सावधानतया सुनिये—

निर्मल तीर्थ में स्नान करके शुद्ध होकर, श्वेतवस्त्र पहनकर, पूजा-सामग्री साथ में लेकर, ब्रह्मा की पूजा प्रारम्भ करे॥ २१-२२॥

पूर्वं संस्नाप्य विधिना पञ्चामृतरसोदकैः।
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्॥ २३॥

सर्वप्रथम देवता को पञ्चामृत एवं शुद्धोदक से विधिपूर्वक स्नान करावे। गोमूत्र, गोमय, दूध, दधि, नवीन सर्पि (घी) एवं कुशोदक॥ २३॥

गायत्र्या गृह्य गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम्।
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि॥ २४॥

इनमें— गायत्रीमन्त्र से गोमूत्र का ग्रहण करे। गन्धद्वारा गोमय का ग्रहण करे। "आप्यायस्व" इस मन्त्र से दूध एवं 'दधि क्राव्णो" इस मन्त्र से दधि ग्रहण करे॥ २४॥

तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम्।
आपोहिष्ठेति मन्त्रेण पञ्चगव्येन स्नापयेत्॥ २५॥

"तेजोऽसि शुक्रम्" इस मन्त्र से घृत को, "देवस्य त्वा" इस मन्त्र से कुशोदक को ग्रहण करें और "आपोहिष्ठा" इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए पञ्चगव्य से ब्रह्मा जी को स्नान करावे॥ २५॥

कपिलापञ्चगव्येन कुशवारियुतेन च।
स्नापयेन्मन्त्रपूतेन ब्रह्मस्नानं हि तत्स्मृतम्॥ २६॥

ब्रह्मस्नान— कपिला गौ के पञ्चगव्य से या मन्त्रपूत कुशोदक से ब्रह्मा जी को कराया गया स्नान 'ब्रह्मस्नान' कहलाता है॥ २६॥

वर्षकोटिसहस्त्रैस्तु यत्पापं समुपार्जितम्।
सुरज्येष्ठं तु संस्नाप्य दहेत्सर्वं न संशयः॥ २७॥

हजारों वर्ष पूर्व किया गया महापाप भी देवता को ब्रह्मस्नान कराने से विनष्ट हो जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ २७॥

एवं संस्नाप्य विधिना ब्रह्माणं बालरूपिणम्।
कपूरागिरुतोयेन ततः संस्नापयेद् द्विजः॥ २८॥

इस तरह उन बालरूपी ब्रह्मा को (वैदिक) विधिपूर्वक स्नान कराकर, भक्तजन कपूर, अगर आदि सुगन्धित द्रव्य मिलाकर शुद्धजल से स्नान करावे॥ २८॥

एवं कृत्वार्चयेद्देवं गायत्रीन्यासयोगतः।
मूर्ध्नः पादतलं यावत्प्रणवं विन्यसेद् बुधः॥ २९॥

गायत्रीन्यास— इस प्रकार, गायत्रीन्यास के द्वारा देवता की

पूजा प्रारम्भ करे। शिर से चरणों तक प्रणव से प्रारम्भ कर विद्वान् पुरुष इस तरह न्यास करे॥ २९॥

तकारं विन्यसेन्मूर्ध्नि सकारं मुखमण्डले।
विकारं कण्ठदेशे तु तुकारं चाङ्गसन्धिषु॥ ३०॥

'त' कार को मूर्धा पर रखे। 'स' कार को मुखमण्डल पर। 'वि' कार को कण्ठदेश में तथा 'तु' कार को अङ्गसन्धियों में॥ ३०॥

र्वकारं हृदि मध्ये तु रेकारं पार्श्वयोर्द्वयोः।
णिकारं दक्षिणे कुक्षौ यकारं वामसंज्ञिते॥ ३१॥

'व' कार को हृदय के मध्य में, 'र' कार को दोनों पशर्वों में, 'णि' कार को दक्षिण कुक्षि में और 'य' कार को वाम कुक्षि में॥३१॥

भकारं कटिनाभिस्थं गोकारं जङ्घयोर्द्वयोः।
देकारं जानुनोर्न्यस्य वकारं पादपद्मयोः॥ ३२॥

'भ' कार को कटिनाभि में, 'गौकार को दोनों जङ्घों में, 'दे' कार को जानुओं पर, तथा 'व' कार को देवता के दोनों चरणों पर रखकर॥ ३२॥

स्यकारमंगुष्ठयोर्न्यस्य धीकारमुरसि न्यसेत्।
मकारं जानुमूले तु हिकारं गुह्यमाश्रितम्॥ ३३॥

'स्य' कार को अङ्गुष्ठों पर, 'धी' कार को उर पर रखे। 'म' कार को जानुमूल पर तथा 'हि' कार को गुह्य प्रदेश पर रखे॥ ३३॥

धिकारं हृदये न्यस्य योकारं चाधरोष्ठके।
योकारं च तथैवान्यमुत्तरोष्ठे न्यसेत्सुधीः॥ ३४॥

'धि' कार को हृत्प्रदेश पर रखकर 'यो' कार को नीचे के ओष्ठ पर, दूसरे 'यो' कार को बुद्धिमान् भक्त उत्तर ओष्ठ पर रखे॥ ३४॥

नकारं नासिकाग्रे तु प्रकारं नेत्रमाश्रितम्।
चोकारं च भ्रुवोर्मध्ये दकारं प्राणमाश्रितम्॥ ३५॥

नासिका के अग्रभाग पर 'न' कार को, नेत्रों पर 'प्र' कार को, दोनों भौंहों पर 'चो' कार को, 'द' कार को प्राण पर रखे॥ ३५॥

यात्कारं च ललाटांते विन्यसेद्वै सुरेश्वरि!
न्यासं कृत्वाऽऽत्मनो देहे देवे कुर्यात्तथा प्रिये॥ ३६॥

हे सुरेश्वरि! 'यात्' कार को ललाट प्रदेश पर भक्त द्वारा न्यस्त करना चाहिये। इस प्रकार अपने देह पर न्यास कर हे प्रिये! देवता के प्रति भी यह गायत्रीन्यास करना चाहिये॥ ३६॥

सर्वोपहारसम्पन्नं कृत्वा सम्यङ् निरीक्षयेत्।
कुंकुमागरुकर्पूरचन्दनेन विमिश्रितम्॥ ३७॥

पूजन— इसके बाद कुङ्कुम, अगर, कपूर, चन्दन मिश्रित उपहार देवता के सम्मुख रखे। सभी उपहारसामग्री का निरीक्षण करे॥३७॥

गन्धतोयैरुपस्कृत्य गायत्र्या प्रणवेन च।
प्रोक्षयेत् सर्वद्रव्याणि पश्चादर्चनमारभेत्॥ ३८॥

उस समस्त सामग्री को गायत्री मन्त्र से तथा प्रणव से सुगन्धित जल से शुद्ध करके ही पूजन प्रारम्भ करना चाहिये॥ ३८॥

दिव्यैः पुष्पैः सुगन्धैश्च मालतीकमलादिभिः।
अशोकैः शतपत्रैश्च बकुलैः पूजयेत् क्रमात्॥ ३९॥

दिव्य एवं सुगन्धित मालती तथा कमल आदि पुष्पों से, अशोक, शतपत्र या बकुल वृक्ष के पत्रों से क्रमशः पूजा करे॥ ३९॥

कृष्णागरुसुधूपेन घृतदीपैस्तथोत्तमैः।
ततः प्रदापयेत्तत्र नैवेद्यं विविधं क्रमात्॥ ४०॥

लोहबान, अगर, धूप तथा घी के दीपक से देवता की पूजा करे। तदनन्तर विविध प्रकार का नैवेदंय देवता को अर्पित करे॥ ४०॥

खण्डलड्डुकश्रीवेष्टकांसाराशोकपल्लवैः ।
स्वस्तिकोल्लिपिकादुग्धतिलवेष्टकिलाटिकाम्॥ ४१॥

देवता को चीनी से बने लड्डू, श्रीवेष्टकांसार, स्वस्तिका, उल्लिपिका, दुग्ध (खोआ) मिश्रित तिल के लड्डू एवं किलाटिका आदि पक्वान्न विशेषों का नैवेद्य अर्पित करे॥ ४१॥

फलानि चैव पक्वानि मूलमन्त्रेण दापयेत्।
ऋग्वेदं च यजुर्वेदं सामवेदं च पूजयेत्॥ ४२॥

इसी के साथ पके फल भी मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए नैवेद्य के रूप में देवता को चढ़ावे॥ ४२॥

ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं धर्मं सम्पूजयेद् बुधः।
ईशानादिक्रमाद्देवि दिशांसु विदिशासु च॥ ४३॥

साथ ही ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं साम.वेद की पूजा करे। एतदनन्तर हे देवि! बुद्धिमान् आराधक को ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य एवं धर्म की भी ईशानादि क्रम से दिशा, विदिशाओं में पूजा करनी चाहिये॥ ४३॥

चतुर्द्दशविद्यास्थानानि ब्रह्मणोऽग्रे प्रपूजयेत्।
हृदयानि ततो न्यस्य देवस्य पुरतः क्रमात्॥ ४४॥

इसी तरह आराधक को, देवता के सम्मुख बैठकर, चौदह विद्यास्थानों की भी पूजा करनी चाहिये. तब देवता के आगे हृदयादिन्यास करे॥ ४४॥

आपोहिष्ठेति ऋगियं हृदयं परिकीर्त्तितम्।
ऋतं सत्यं शिखा प्रोक्तं उदुत्यं नेत्रमादिशेत्॥ ४५॥

'आपो हिष्ठा' यह ऋग्मन्त्र हृदय में न्यस्त करे। ''ऋतं सत्यं'' शिखा पर तथा 'उदुत्यं' यह मन्त्र नेत्रों पर न्यस्त करे॥ ४५॥

चित्रं देवानामित्येवं सर्वलोकेषु विश्रुतम्।
ब्रह्मंस्ते छादयामीति कवचं समुदाहृतम्॥ ४६॥

'चित्रं देवानाम्' यह मन्त्र सर्वलोक प्रसिद्ध है। 'ब्रह्मंस्ते छादयामि' यह मन्त्र 'कवच' कहा गया है॥ ४६॥

भूर्भुवः स्वरिति तथा शिरसे परिकीर्त्तितम्।
गायत्र्या पूजयेद्देवमोङ्कारेणाभिमंत्रितम्॥ ४७॥

'भूर्भुवः स्वः' इस मन्त्र से देवता के शीर्ष का पूजन करना चाहिये। देवता की पूजा ॐकार युक्त गायत्रीमन्त्र से करनी चाहिये॥ ४७॥

प्रणवेनापरान् सर्वानृग्वेदादीन् प्रपूजयेत्।
गायत्री परमो मन्त्रो वेदमाता विभावरी॥ ४८॥

अन्य सब ऋग्वेदादि की पूजा ॐकार उच्चारणपूर्वक करे। यहाँ यह गायत्रीमन्त्र उत्कृष्टतम मन्त्र है। इसे 'वेदमाता' कहा जाता है॥ ४८॥

गायत्र्यक्षरतत्त्वैस्तु ब्रह्माणं यस्तु पूजयेत्।
उपोष्य पञ्चदश्यां तु स याति परमं पदम्॥ ४९॥

जो आराधक गायत्रीमन्त्र के अक्षर तत्त्वों से ब्रह्मा की पूजा करता है और पूर्णिमा के दिन उपवासव्रत रखता है वह परम पद (मोक्ष) प्राप्त कर लेता है॥ ४९॥

संसारसागरं घोरमुत्तितीर्षुर्द्विजो यदि।
प्रभासे कार्त्तिके मासि ब्रह्माणं पूजयेत् सदा॥ ५०॥

यदि आराधक इस घोर संसारमार्ग को पार करना चाहता है तो उसे कार्तिक मास में प्रभास तीर्थ जाकर वहाँ ब्रह्मा का पूजन करना चाहिये॥ ५०॥

यस्य दर्शनमात्रेण अश्वमेधफलं लभेत्।
कस्तं न पूजयेद्विद्वान् प्रभासे बालरूपिणम्॥ ५१॥

जिसके दर्शनमात्र से अश्वमेधयज्ञ का फल प्राप्त होता है, तब कोई बुद्धिमान् आराधक प्रभास क्षेत्र में आकर उन बालरूपी ब्रह्मा की पूजा करने में क्यों हिचकिचायगा!॥ ५१॥

यस्यैकदिवसप्रान्ते सदेवासुरमानवाः।
विलयं यान्ति देवेशि कस्तं न प्रतिपूजयेत्॥ ५२॥

हे देवेशि! जिसके एक दिवस भाग में ही सभी देवता, असुर एवं मानव विनष्ट हो जाते हैं, ऐसे समर्थ देवता की पूजा करने में कौन बुद्धिमान् आनाकानी करेगा!॥ ५२॥

पिता यः सर्वदेवानां भूतानां च पितामहः।
यस्मादेष स तैः पूज्यो ब्राह्मणैः क्षेत्रवासिभिः॥ ५३॥

वे ब्रह्मा सभी देवताओं के पिता हैं, सभी प्राणियों के पितामह हैं, अतः सभी क्षेत्रवासी आराधकों को उनकी पूजा करनी चाहिये॥५३॥

रुद्ररूपी विश्वरूपी स एवं भुवनेश्वरः।
पौर्णमास्यामुपोषित्वा ब्रह्माणं जगतां यतिम्।
अर्चयेद्यो विधानेन सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥ ५४॥

वह जगत्पति ब्रह्मा ही रुद्ररूप तथा विश्वरूप हैं तथा सकल भुवनों के स्वामी हैं। अतः पूर्णिमा के दिन उपवास करते हुए जो आराधक उन ब्रह्मा की विधिपूर्वक पूजा करता है वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है॥ ५४॥

रथयात्रा—

कार्त्तिके मासि देवस्य रथयात्रा प्रकीर्त्तिता।
यां कृत्वा मानवो भक्त्या याति ब्रह्मसलोकताम्॥ ५५॥

कार्तिक मास में इन ब्रह्मदेव की रथयात्रा का बहुत वर्णन है, जिसको भक्तिपूर्वक पूर्ण कर कोई भी ब्रह्मा का भक्त, मृत्यु के बाद, ब्रह्मलोक प्राप्त कर सकता है॥ ५५॥

कार्त्तिके मासि देवेशि पौर्णमास्यां चतुर्मुखम्।
मार्गेण चर्मणा सार्द्धं सावित्र्या च परन्तपः॥ ५६॥
भ्रामयेन्नगरं सर्वं नानावाद्यैः समन्वितम्।
स्थापयेद् भ्रामयित्वा तु सकलं नगरं नृपः॥ ५७॥
ब्राह्मणान् भोजयित्वाग्रे शाण्डिलेयं प्रपूज्य च।
आरोपयेद्रथे देवं पुण्यवादित्रनिःस्वनैः॥ ५८॥

हे देवेशि! कार्तिक मास में पौर्णमासी के दिन चतुर्मुख ब्रह्मा जी (की मूर्ति) को मृगचर्म पहनाकर, सावित्री के साथ रथ में बैठाकर॥ ५६॥

कोई राजा विविध गीत नृत्य एवं वाद्यों के साथ सम्पूर्ण नगर में घुमावे। तथा वह नगर यात्रा पूर्ण होने पर॥ ५७॥

सर्वप्रथम शाण्डिल्य गोत्रोत्पन्न ब्राह्मण की पूजा कर, सभी ब्राह्मणों को भोजन कराकर, माङ्गलिक बाजे-गाजे के साथ ब्रह्मा जी को रथ पर विराजमान करे॥ ५८॥

रथाग्रे शाण्डिलीपुत्रं पूजयित्वा विधानतः।
ब्राह्मणान् वाचयित्वा च कृत्वा पुण्याहमङ्गलम्॥ ५९॥

रथ के आगे आगे विधिपूर्वक शाण्डिल्य ब्राह्मण का पूजन कर तथा अन्य ब्राह्मणों का भी पुण्याहवाचन करे॥ ५९॥

देवमारोपयित्वा तु रथे कुर्यात् प्रजागरम्।
नानाविधैः प्रेक्षणकैर्ब्रह्मघोषैश्च पुष्कलैः॥ ६०॥

देवता (की मूर्ति) को विविध माङ्गलिक कार्यक्रम एवं ब्रह्मघोषों एवं दर्शनीय झाँकियों के साथ रथ में स्थापित करे॥ ६०॥

नारोढव्यं रथे देवि शूद्रेण शुभमिच्छता।
नाधर्मेण विशेषेण मुक्त्वैकं भोजकं प्रिये॥ ६१॥

ब्रह्मणो दक्षिणे पार्श्वे सावित्रीं स्थापयेत् प्रिये।
भोजकं वामपार्श्वे तु पुरतः पङ्कजं न्यसेत्॥ ६२॥

देवि! इस रथ पर किसी शूद्र को किसी भी दशा में नहीं चढ़ना चाहिये, यदि वह अपना हित चाहता है। प्रिये! इसी तरह, किसी अधर्मी को भी उस रथ पर नहीं चढ़ना चाहिये, केवल एक भोजक (पुजारी) को छोड़कर॥ ६१॥

हे प्रिये! उस रथ में ब्रह्मा के दक्षिण पार्श्व में सावित्री की स्थापना करे। वामपार्श्व में पुजारी बैठे और देवता के सामने पद्मपुष्प रखे॥ ६२॥

एवं तूर्यनिनादैश्च शङ्खशब्दैश्च पुष्कलैः।
भ्रामयित्वा रथं देवि पुरं सर्वं च दक्षिणम्।
स्वस्थाने स्थापयेद्भूयः कृत्वा नीराजनं बुधः॥ ६३॥

इस तरह बुद्धिमान् राजा तुरही आदि वाद्यों के साथ, शङ्खध्वनिपूर्वक उस रथ को समस्त नगर में दक्षिण दिशा से भ्रमण करावे। तदनन्तर, यथास्थान लाकर वहाँ पुनः स्थापित कर देवता की पूजा करे॥ ६३॥

य एवं कुरुते यात्रां भक्त्या यश्चापि पश्यति।
रथं वाऽऽकर्षयेद्यस्तु स गच्छेद्ब्रह्मणः पदम्॥ ६४॥

इस प्रकार जो यात्रा करता है, या उस अवस्था में देवता के दर्शन करता है, या उस रथ के खींचने में सहायक होता है। वह भक्त देहत्याग के बाद, ब्रह्मलोक की प्राप्ति करता है॥ ६४॥

यो दीपं धारयेत्तत्र ब्रह्मणो रथपृष्ठगः।
पदे पदेऽश्वमेधस्य स फलं विन्दते महत्॥ ६५॥

या जो भक्त उस रथ के पीछे पीछे प्रज्वलित दीपक लेकर चलता है वह पद-पद पर अश्वमेधयज्ञ का महान् फल प्राप्त करता है॥ ६५॥

यो न कारयते राजा रथयात्रां तु ब्रह्मणः।
स पच्यते महादेवि रौरवे कालमक्षयम्॥ ६६॥

जो राजा (अपने राज्य में) ब्रह्मा की रथयात्रा ा समारोह

नहीं करता। हे महादेवि! वह देहपात के बाद रौरवनरक में अनन्त काल तक कष्ट भोगता है॥ ६६॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन राष्ट्रस्य क्षेममिच्छता।
रथयात्रां विशेषेण स्वयं राजा प्रवर्त्तयेत्॥ ६७॥

अतः प्रत्येक राजा, अपनी प्रजा का हित चाहते हुए, ब्रह्मा की रथयात्रा का स्वयं आयोजन करे॥ ६७॥

प्रतिपदि ब्राह्मणांश्चापि भोजयेद्विधिवत् सुधीः।
वासोभिरहतैश्चापि गन्धमाल्यानुलेपनैः॥ ६८॥

तदनन्तर प्रतिपद् के दिन ब्राह्मणों को विधिपूर्वक सुगन्धित पुष्प, माला आदि से सत्कृत कर भोजन करावे, तथा उन्हें नवीन वस्त्रों का दान करे॥ ६८॥

कार्त्तिके मास्यमावास्यां यस्तु दीपप्रदीपनम्।
शालायां ब्रह्मणः कुर्यात् स गच्छेत् परमं पदम्॥ ६९॥

मन्दिर में दीपक— जो भक्त कार्तिकी अमावस्या के दिन ब्रह्मा जी के मन्दिर में दीपक जलाता है उसे अन्त में अवश्य परम पद प्राप्त होता है॥ ६९॥

उत्सवेषु च सर्वेषु सर्वकाले विशेषतः।
पूजयेयुरिमं विप्रा ब्रह्माणं जगतां गुरुम्॥ ७०॥

अन्य साधारण उत्सवों में भी ब्राह्मणों को कार्य प्रारम्भ करते समय, सर्वप्रथम जगद्गुरु ब्रह्मा का ही पूजन करना चाहिये॥ ७०॥

यथाकृत्यप्रयोगेण सम्यक्छ्रद्धासमन्विताः।
पूज्यो दिव्योपचारेण यथावित्तानुसारतः॥ ७१॥

सामाजिक कृत्यों के अवसर पर भी, सम्यक् श्रद्धा से युक्त भक्तों को दिव्य उपचार से अपनी वित्तोय स्थिति के अनुसार ब्रह्मा जी की पूजा करते रहना चाहिये॥ ७१॥

एवं ते कथितं देवि पूजामाहात्म्यमुत्तमम्।
प्रभासक्षेत्रमाहात्म्यं ब्रह्मणो बालरूपिणः॥ ७२॥

हे देवि! इस तरह मैंने आपको देवाधिदेव बालरूप ब्रह्माजी की पूजा तथा उनके आवासस्थल प्रभासक्षेत्र का उत्तम माहात्म्य सुना दिया॥ ७२॥

अष्टोत्तरशतनाम—

तस्याहं कथयिष्यामि नाम्नामष्टोत्तरं शतम्।
प्रदत्वा च पठित्वा च यज्ञायुतफलं लभेत्॥ ७३॥

अब मैं आपके सम्मुख उनके एक सौ आठ (१०८) नामों का वर्णन करूँगा, जिनके पाठ तथा दूसरों को सुनाने का फल दश हजार यज्ञों के सम्पादन के तुल्य होता है॥ २॥

गायत्र्या लक्षजाप्येन सम्यग्जप्तेन यत् फलम्।
तत् फलं समवाप्नोति स्तोत्रस्यास्य उदीरणात्॥ ७४॥

गायत्री मन्त्र के एक लाख या निरन्तर जप का जो उत्कृष्ट फल होता है वही फल इस स्तोत्र के पाठ से भी मिलता है॥ ७४॥

इदं स्तोत्रवरं दिव्यं रहस्यं पापनाशनम्।
न देयं दुष्टबुद्धीनां निन्दकानां तथैव च॥ ७५॥

यह उत्तम एवं दिव्य स्तोत्र गुप्त रखने योग्य है तथा पापनाशक है। दुर्बुद्धि (पापबुद्धि) या देवनिन्दक पुरुषों को इसे कभी नहीं सुनाना चाहिये॥ ७५॥

ब्राह्मणाय प्रदातव्यं श्रोत्रियाय महात्मनं।
विष्णुना हि पुरा पृष्टं ब्रह्मणः स्तोत्रमुत्तमम्॥ ७६॥

यहाँ, जो ब्राह्मण वेदभावी हो, शुद्धात्मा हो, उसे अवश्य सुनाना चाहिये। भगवान् विष्णु ने भी कभी ब्रह्माजी से इस उत्तम स्तोत्र के विषय में पूछा था॥ ७६॥

विष्णु०

केषु केषु च स्थानेषु देवदेव पितामह!
सञ्चिन्त्यस्तन्ममाचक्ष्व त्वं हि सर्वविदुत्तमः॥ ७७॥

विष्णु— हे पितामह! हे देवाधिदेव! आप किन किन स्थानों में किन किन रूपों में ध्यान करने योग्य है, यह मुझे आप बताइये; क्योंकि आप सर्वज्ञों में श्रेष्ठ हैं॥ ७७॥

ब्रह्मा०

पुष्करेऽहं *सुरश्रेष्ठो* गया ां *प्रपिताम्हः*।
कान्यकुब्जे *वेदगर्भो* भृगुक्षेत्रे *चतुर्मुखः*॥ ७८॥

ब्रह्मा जी— पुष्कर क्षेत्र में *सुरश्रेष्ठ नाम से* मेरा चिन्तन करना चाहिये, तथा गया तीर्थ में *प्रपितामह* नाम से। इसी तरह कान्यकुब्ज (कन्नौज) में *वेदगर्भ* नाम से एवं भृगुक्षेत्र में *चतुर्मुख* नाम से मेरा ध्यान करना चाहिये॥ ७८॥

कौबेर्यां *सृष्टिकर्ता* च नन्दिपुर्यां *बृहस्पतिः*।
प्रभासे *बालरूपी* च वाराणस्यां *सुरप्रियः*॥ ७९॥

कौबेरी (अलकापुरी) में *सृष्टिकर्ता*, नन्दिपुरी (पश्चिम दिशा) में *बृहस्पति*, प्रभासक्षेत्र में *बालरूपी* और वाराणसी में *सुरप्रिय* नाम से मेरा चिन्तन करना चाहिये॥ ७९॥

द्वारावत्यां *चक्रदेवो* वैदिशे *भुवनाधिपः*।
पौण्ड्रके *पुण्डरीकाक्षः पीताक्षो* हस्तिनापुरे॥ ८०॥

द्वारावती (द्वारिका) नगरी में *चक्रदेव*, विदिशा (भेलसा) क्षेत्र में *भुवनाधिप*, तथा पौण्ड्रक (एक प्राचीन देश) में *पुण्डरीकाक्ष*, एवं हस्तिनापुर में *पीताक्ष* नाम से मेरा चिन्तन करना चाहिये॥ ८१॥

जयन्त्यां *विजयश्चासौ जयन्तः* पुरुषोत्तमे।
वाडेषु *पद्महस्तोऽहं* ताम्रलिप्तौ तमोनुदः॥ ८१॥

जयन्ती (भाद्रपद कृष्णा अष्टमी) के दिन *विजय* तथा पुरुषोत्तम (अधिक मास या जगन्नाथपुरी क्षेत्र) में *जयन्त* तथा वाड देश में *पद्महस्त* एवं ताम्रलिप्ति में *तमोनुद* नाम से मेरा चिन्तन करना चाहिये॥ ८१॥

आहिच्छत्र्यां *जनानन्दः* काञ्चीपुर्यां *जनप्रियः*।
कर्णाटस्य पुरे *ब्रह्मा* ऋषिकुण्डे *मुनिस्तथा*॥ ८२॥

आहिच्छत्र नगरी में *जनानन्द*, काञ्चीपुरी में *जनप्रिय* नाम से, कर्णाटक प्रदेश में *ब्रह्मा* नाम से तथा ऋषिकुण्ड में *मुनि* नाम से मेरा ध्यान करना चाहिये॥ ८२॥

श्रीकण्ठे *श्रीनिवासश्च* कामरूपे *शुभङ्करः*।
***उड्डियाने देवकर्ता स्त्रष्टा* जालन्धरे तथा॥ ८३॥**

श्रीकण्ठ प्रदेश में *श्रीनिवास*, काममरूप में *शुभङ्कर*, उड्डियान प्रदेश में *देवकर्ता*, और जालन्धर में *स्त्रष्टा* नाम से मेरा चिन्तन करना चाहिये॥ ८३॥

मल्लिकाख्ये तथा *विष्णुर्महेन्द्रे भार्गवस्तथा*।
***गोनर्दः* स्थविराकारे ह्युज्जयिन्यां *पितामहः*॥ ८४॥**

मल्लिका (श्रीशैलपर्वत) प्रदेश में *विष्णु*, महेन्द्र पर्वत पर *भार्गव*, स्थविराकार प्रदेश में *गोनर्द* तथा उज्जयिनी प्रदेश में *पितामह नाम* से मेरा चिन्तन करना चाहिये॥ ८४॥

कौशाम्ब्यां तु *महादेवो* ह्ययोध्यायां च *राघवः*।
***विरिञ्चिश्चि*त्रकूटे तु *वाराहो* विन्ध्यपर्वते॥ ८५॥**

मेरे भक्तों को चाहिये कि वे, कौशाम्बी क्षेत्र में वास करते समय, *महादेव* नाम से मेरी आराधना करें तथा अयोध्या में रहते समय *राघव* नाम से। इसी तरह चित्रकूट में रहते हुए *विरिञ्चि* नाम से तथा विन्ध्याचल क्षेत्र में वास करते हुए *वाराह* नाम से मेरी आराधना करें॥ ८५॥

गङ्गाद्वारे *सुरश्रेष्ठो* हिमवन्ते तु *शङ्करः*।
देहिकायां *स्रुचाहस्तो पद्महस्त*तथाऽर्बुदे॥ ८६॥

गङ्गाद्वार के पवित्र क्षेत्र में रहते हुए *सुरश्रेष्ठ*, हिमालय में रहते हुए *शङ्कर* नाम से, देहिका क्षेत्र में *स्रुचाहस्त* नाम से तथा अर्बुद क्षेत्र में *पद्महस्त* नाम से मेरी आराधना करनी चाहिये॥ ८६॥

वृन्दावने *पद्मनेत्रः कुशहस्तश्च* नैमिषे।
गोपक्षेत्रे च *गोविन्दः सुरेन्द्रो* यमुनातटे॥ ८७॥

वृन्दावन क्षेत्र में *पद्मनेत्र* नाम से, नैमिषारण्य क्षेत्र में *कुशहस्त*, गोपक्षेत्र में *गोविन्द* तथा यमुना तट पर रहते हुए सुरेन्द्र नाम से मेरा चिन्तन करना चाहिये॥ ८७॥

भागीरथ्यां *पद्मतनुः* जनानन्दो जनस्थले।
कौङ्कणे च स *मध्वक्षः* काम्पिल्ये *कनकप्रभः*॥ ८८॥

भागीरथी (गङ्गा) तट पर रहते हुए *पद्मतनु*, जनस्थल क्षेत्र में *जनानन्द*, कौङ्कण क्षेत्र में *मध्वक्ष*, एवं काम्पिल्य क्षेत्र में *कनकप्रभ* नाम से मेरा चिन्तन करना चाहिये॥ ८८॥

खेटके *चान्नदाता* च *शम्भुश्चैव* क्रतुस्थले।
लङ्कायां चैव पौलस्त्यः काश्मीरे *हंसवाहनः*॥ ८९॥

खेटकक्षेत्र में *अन्नदाता,* क्रतुस्थल में *शम्भु* एवं लङ्काप्रदेश में *पौलस्त्य* नाम से एवं काश्मीर क्षेत्र में *हंसवाहन* नाम से भक्तों को मेरा ध्यान करना चाहिये॥ ८९॥

वसिष्ठश्चार्बुदे चैव *नारदश्चोत्पलावने*।
मेधके *श्रुतिदाता* च प्रयागे *यजुषां पतिः*॥ ९०॥

अर्बुद क्षेत्र में *वसिष्ठ* नाम से एवं उत्पलवन क्षेत्र में *नारद* नाम से, मेधक क्षेत्र में *श्रुतिदाता* नाम से तथा प्रयागक्षेत्र में *यजुषाम्पति* नाम से मेरा चिन्तन करना चाहिये॥ ९०॥

शिवलिङ्गे *सामवेदो* मर्कटे च *मधुप्रियः*।
***नारायणश्च* गोमन्ते विदर्भायां *द्विजप्रियः*॥ ९१॥**

शिवलिङ्ग के सम्मुख *सामवेद,* मर्कटक्षेत्र में *मधुप्रिय* एवं गोमन्तप्रदेश में *नारायण* तथा विदर्भक्षेत्र में *द्विजप्रिय* नाम से मेरा चिन्तन करना चाहिये॥ ९१॥

अङ्कुलके *ब्रह्मगर्भो* ब्रह्मवाहे *सुतप्रियः*।
इन्द्रप्रस्थे *दुराधर्षश्चम्पायां सुरमर्दनः*॥ ९२॥

अङ्कुलक क्षेत्र में *ब्रह्मगंर्भ,* तथा ब्रह्मवाह क्षेत्र में *सुतप्रिय,* एवं इन्द्रप्रस्थ में *दुराधर्ष* और चम्पाक्षेत्र में *सुरमर्दन* नाम से मेरा ध्यान करना चाहिये॥ ९२॥

विरजायां *महारूपः सुरूपो* राष्ट्रवर्धने।
कदम्बके *जनाध्यक्षो देवाध्यक्षः* समस्थले॥ ९३॥

विरजा क्षेत्र में *महारूप,* राष्ट्रवर्धन तीर्थ में *सुरूप,* कदम्बक तीर्थ में *जनाध्यक्ष* और समस्थल में *देवाध्यक्ष* नाम से मेरा स्मरण करना चाहिये॥ ९३॥

***गङ्गाधरो* रुद्रपीठे सुपीठे *जलदः* स्मृतः।**
त्र्यम्बके *त्रिपुरारिश्च* श्रीशैले च *त्रिलोचनः*॥ ९४॥

रुद्रपीठ में *गङ्गाधर,* सुपीठ क्षेत्र में *जलद* तथा त्र्यम्बक क्षेत्र मे *त्रिपुरारि* और श्रीशैल क्षेत्र में *त्रिलोचन* नाम से मुझको जाना जाता है॥ ९४॥

***महादेवः* प्लक्षपुरे कपाले *वेधनाशनः*।**
शृङ्गवेरपुरे शौरिर्निमिषे *चक्रधारकः*॥ ९५॥

प्लक्षपुर में *महादेव कपालक्षेत्र में वेधनाशन*, शृङ्गवेरपुर में *शौरि* तथा निमिष (नैमिषारण्य) तीर्थ में मुझ को *चक्रधारक* नाम से जानना चाहिये॥ ९५॥

नन्दिपुर्यां *विरूपाक्षो गौतमः* प्लक्षपादपे।
***माल्यवान्* हस्तिनाथे तु *द्विजेन्द्रो* वाचिके तथा॥ ९६॥**

नन्दिपुरी में मेरी आराधना करते समय *विरूपाक्ष*, पीपल (प्लक्ष) वृक्ष के नीचे मेरी आराधना करते समय *गौतम*, हस्तिनाथ क्षेत्र में आराधना करते समय *माल्यवान्* और वाचिक आराधना करते समय *द्विजेन्द्र* नाम से मुझको स्मरण करना चाहिये॥ ९६॥

इन्द्रपुर्यां *दिवानाथो* भूतिकायां *पुरन्दरः*।
***हंसबाहुश्च* चन्द्रायां चम्पायां *गरुडप्रियः*॥ ९७॥**

इन्द्रपुरी में *दिवानाथ*, भूतिका में *पुरन्दर*, चन्द्रा में *हंसबाहु*, तथा चम्पापुरी में *गरुड़प्रिय* नाम से मेरी आराधना करनी चाहिये॥९७॥

महोदये *महायक्षः सुयज्ञः* पूतके वने।
सिद्धेश्वरे *शुक्लवर्णो* विभायां *पद्मबोधकः*॥ ९८॥

महोदय क्षेत्र में महायक्ष, पूतक वन में *सुयज्ञ* एवं सिद्धेश्वर क्षेत्र में *शुक्लवर्ण* तथा विभा तीर्थ में *पद्मबोधक* नाम से मेरी आराधना करनी चाहिये॥ ९८॥

देवदारुवने *लिङ्गी* उदकेऽथ *उमापतिः*।
***विनायको* मातृस्थाने अलकायां *धनाधिपः*॥ ९९॥**

देवदारुवन में मेरी आराधना करते समय *लिङ्गी* नाम से, उदकतीर्थ में आराधना करते समय *उमापति* नाम से, मातृस्थान में आराधना करते समय *विनायक* एवं अलकातीर्थ में आराधना करते समय *धनाधिप* नाम से मेरी आराधना करनी चाहिये॥ ९९॥

त्रिकूटे चैव *गोविन्दः* पाताले *वासुकिस्तथा*।
कोविदारे *युगाध्यक्षः* स्त्रीराज्ये च *सुरप्रियः*॥ १००॥

त्रिकूट पर्वत पर आराधना करते समय *गोविन्द* नाम से तथा पाताल में *वासुकि* नाम से, कोविदारक्षेत्र में *युगाध्यक्ष*, एवं स्त्रीराज्य में *सुरप्रिय* नाम से मेरी आराधना करनी चाहिये॥ १००॥

पूर्णगिर्यां *सुभोगश्च* शाल्मल्यां *तक्षकस्तथा*।
अमरे *पापहा* चैव अम्बिकायां *सुदर्शनः*॥ १०१॥

पूर्णगिरि पर *सुभोग,* तथा शाल्मलीवन में *तक्षक* नाम से, अमरतीर्थ में *पापहा* नाम से एवं अम्बिकातीर्थ में *सुदर्शन* नाम से मेरा स्मरण करना चाहिये॥ १०१॥

नरवाप्यां *महावीरः* कान्तारे *दुर्गनाशनः*।
पद्मवत्यां *पद्मगृहो* गगने *मृगलाञ्छनः*॥ १०२॥

नरवापी क्षेत्र में महावीर, कान्तार (जङ्गल) में *दुर्गनाशन* पद्मवती में *पद्मगृह* तथा गगनतीर्थ में मृगलाञ्छन नाम से भक्तों को मेरी आराधना करनी चाहिये॥ १०२॥

माहात्म्य

अष्टोत्तरं नामशतं यत्रैतत् परिपठ्यते।
तत्रैव मम सान्निध्यं त्रिसन्ध्यं मधुसूदन!॥ १०३॥

स्तोत्र का माहात्म्य— हे मधुसूदन! जहाँ भी तीनों कालों में मेरा यह अष्टोत्तरशत नामक स्तोत्र भक्तिपूर्वक पढ़ा जायगा वहाँ मैं तत्काल प्रत्यक्ष उपस्थित हो जाऊँगा॥ १०३॥

एतेषामपि यस्त्वेकं पश्येद्वै बालरूपिणम्।
सर्वेषां लभते पुण्यं पूर्वोक्तानां च वेधसाम्॥ १०४॥

जो भी कोई भक्त मेरे इन सौ नामों में से एक बालरूपी ब्रह्मा का भी दर्शन कर लेगा तो वह इन सौ ब्रह्माओं के रूपों के दर्शन का पुण्यफल प्राप्त करेगा॥ १०४॥

एतैर्यो नामभिः कृष्ण प्रभासे स्तौति मां सदा।
स्थानं मे विजयं लब्ध्वा मोदते शाश्वतीः समाः॥ १०५॥
कायिकं वाचिकं चैव मानसं चैव दुष्कृतम्।
तत् सर्वं नाशमायाति मम स्तोत्रानुकीर्तनात्॥ १०६॥

हे कृष्ण! प्रभास क्षेत्र में इन नामों से जो मेरी स्तुति करता है, यह मेरे स्थान में विजय प्राप्त कर निरन्तर दीर्घकाल तक वास करता है। मेरे भक्तों से जो भी शरीर, वाणी या मन द्वारा किये गये पाप होंगे

वे सभी इस अष्टोत्तरशत नाम स्तोत्र पाठ से विनष्ट हो जाते हैं ॥ १०५-१०६ ॥

पुष्पोपहारैर्धूपैश्च ब्राह्मणानां च तर्पणैः ।
ध्यानेन च स्थिरेणाशु प्राप्यते यत्फलं नरैः ॥ १०७ ॥
तत् फलं समवाप्नोति मम स्तोत्रानुकीर्तनात् ॥ १०८ ॥

भक्तजनों द्वारा देव-मूर्ति को फूलों की माला पहना कर, धूप-दीप निवेदन कर, ब्राह्मणों की तृप्ति कराकर या एकाग्रचित्त से ध्यान कर जो पुण्यफल प्राप्त किया जाता है; वही फल इस एकाकी स्तोत्र-पाठ से भी प्राप्त किया जा सकता है ॥ १०७-१०८ ॥

ब्रह्महत्यादिपापानि इह लोके कृतान्यपि ।
अकामतः कामतो वा तानि नश्यन्ति तत्क्षणात् ॥ १०९ ॥

उनके द्वारा इस लोक में जो भी इच्छा या अनिच्छा पूर्वक ब्रह्महत्यादि पाप किये जा चुके हों वे भी इस स्तोत्र पाठ के प्रभाव से तत्क्षण ही नष्ट हो जाते हैं ॥ १०९ ॥

इदं स्तोत्रं ममाभीष्टं शृणुयाद्वा पठेच्च वा ।
स मुक्तः पातकैः सर्वैः प्राप्नुयान्महदीप्सितम् ॥ ११० ॥

यह स्तोत्र मुझे अत्यन्त अभीष्ट है, अतः जो भी इसका पाठ या श्रवण करेगा वह सभी पापों से मुक्त हो जायगा तथा उसकी बड़ी से बड़ी मनःकामना भी अवश्य पूर्ण होगी ॥ ११० ॥

प्रभास तीर्थ में कुछ विशेष तिथियों का महत्त्व

अन्यद् रहस्यं ते वच्मि शृणु कृष्ण! यथार्थतः ।
आग्नेयं तु यदा ऋक्षं कार्तिक्यां भवतिक्क चित् ॥ १११ ॥
महती सा तिथिर्ज्ञेया प्रभासे मम वल्लभा ॥ ११२ ॥

हे कृष्ण! सुनिये, मैं तुम्हें एक अन्य यथार्थ रहस्य की बात बताना चाहता हूँ। वह यह है कि यदि कार्तिक मास की किसी तिथि से कृत्तिका (या अगस्त्य) नक्षत्र सम्पृक्त हो तो वह तिथि मुझे बहुत ही प्रिय है। अतः उस तिथि के दिन प्रभास क्षेत्र में की गयी मेरी पूजा मुझे बहुत प्रिय है ॥ १११-११२ ॥

प्राजापत्यं यदा ऋक्षं तिथौ तस्यां भवेद् यदि।
सा महाकार्त्तिकी पुण्या देवानामपि दुर्लभा॥ ११३॥

इसी तरह कार्तिक मास की जिस तिथि में रोहिणी नक्षत्र संलग्न हो वह कार्तिकी तिथि देवताओं को भी मेरी पूजा के लिये दुर्लभ है; क्योंकि वह महाकार्त्तिकी तिथि अत्यधिक पुण्यप्रद है॥ ११३॥

मन्दे वार्के गुरौ वापि कार्त्तिकी कृतिकायुता।
तत्राश्वमेधिकं पुण्यं दृष्ट्वा वै बालरूपिणम्॥ ११४॥

गुरु, शनि (मन्द) या रवि के दिन कृत्तिका तिथि से युक्त कार्तिकी पूर्णिमा के दिन बालरूपी ब्रह्मा का दर्शन अश्वमेध यज्ञ के तुल्य फलप्रद होता है॥ ११४॥

विशाखासु यदा सूर्यः कृत्तिकासु च चन्द्रमाः।
स योगः पद्मको नाम प्रभासे दुर्लभो हरे॥ ११५॥

जब सूर्य विशाखा नक्षत्र से युक्त हो तथा चन्द्रमा कृत्तिका नक्षत्र से, तब हे कृष्ण! वह योग प्रभास तीर्थ में 'पद्मक' नाम से प्रसिद्ध होता है॥ ११५॥

तस्मिन् योगे नरो दृष्ट्वा प्रभासे बालरूपिणम्।
पापकोटियुतो वापि यमलोकं न पश्यति॥ ११६॥

इस शुभ योग में यदि कोई भक्त जन प्रभास तीर्थ में बालरूप ब्रह्मा का दर्शन करे तो वह करोड़ों पाप करके भी यमलोक- (नरक-) गामी नहीं होता॥ ११६॥

ईश्वर०

इत्येवं कथितं स्तोत्रं ब्रह्मणा हरये पुनः।
मया तव समाख्यातं माहात्म्यं ब्रह्मदैवतम्॥ ११७॥

शङ्कर— इस तरह यह स्तोत्र ब्रह्माजी ने भगवान् विष्णु को सुनाया था। उसी तरह मैंने भी आपको यह ब्रह्मदेव का स्तोत्र माहात्म्य सहित सुना दिया॥ ११७॥

सर्वपापहरं नृणां श्रुतं सर्वार्थसाधकम्।
भूमिदानं च दातव्यं तत्र यात्राफलेप्सुभिः॥ ११८॥

इस स्तोत्र को यदि प्रतिदिन सुना जाय तो यह सब प्रकार के पापों का नाशक होता है तथा सभी मन:कामनाओं की पूर्ति करने वाला है। प्रभासतीर्थ की यात्रा का फल चाहने वाले भक्तों को यात्रा से पूर्व सत्पात्र को कुछ न कुछ भूमिदान अवश्य करना चाहिये॥ ११८॥

कमण्डलुः श्वेतवस्त्रं महादानानि षोडश।
तत्रैव देवि देयानि ब्रह्मणे बालरूपिणे॥ ११९॥

हे देवि! वहाँ (प्रभास में) जाकर बालरूप ब्रह्मा के निमित्त भक्तों को कमण्डलु, श्वेतवस्त्र एवं सोलह (१६) महादान अवश्य करने चाहिये॥ ११९॥

महापर्वणि सम्प्राप्ते कुर्युः पारायणं द्विजाः।
सर्वे ते ब्राह्मणा देवि क्षेत्रमध्यनिवासिनः॥ १२०॥

श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां
सप्तमे प्रभासखण्डे प्रथमे प्रभासक्षेत्रमाहात्म्ये
बालरूपिब्रह्मणो माहात्म्यवर्णनं नाम
सप्तोत्तरशततमोऽध्यायः सम्पूर्णः॥

महापर्व आने पर जो ब्रह्मा के भक्त इस स्तोत्र का पारायण करते हैं हे देवि! वे सभी भक्त ब्रह्माजी द्वारा प्रभासक्षेत्र के वासी ही माने जाते हैं॥ १२०॥

स्कन्दमहापुराण नामक इक्कासी हजार वाली संहिता से
सम्पृक्त प्रभासखण्ड में प्रथम प्रभासक्षेत्रमाहात्म्य के
वर्णन-प्रसङ्ग में बालरूप ब्रह्मा का वर्णन नामक
एक सौ सातवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥

❋❋❋

दीर्घायु होने के लिए जप

स्वयम्भूः प्रथमे कल्पे द्वितीये पद्मभूः स्थितः।
तृतीये विश्वकर्त्तेति बालरूपी चतुर्थके॥
एतानि मुख्यनामानि कथितानि स्वयम्भुवः।
नित्यं संस्मरते यस्तु स दीर्घायुर्नरो भवेत्॥

(स्कन्दपुराणतः)